आचार्य चतुरसेन

मेरी प्रिय कहानियाँ

मेरी प्रिय कहानियां/ आचार्य चतुरसेन

आचार्य जी ने बौद्ध, मुगल, राजपूत-कालों का
विशेष अध्ययन किया है
और फलस्वरूप अनेक सुन्दर कहानियों की
सृष्टि की है
इसके अतिरिक्त उनकी सामाजिक,
राजनीतिक, भावात्मक, मनोवैज्ञानिक
और समस्या कहानियां भी अनूठी बन पड़ी हैं
रजवाड़ों के जीवन को आचार्य जी ने
बहुत पास से देखा है और उससे सम्बन्धित
कई कलापूर्ण कहानियों की रचना की है
यह संकलन जहां आचार्य जी की विविध रस-रूपों से
समन्वित कहानियों का आस्वादन कराता है
वहां एक प्रौढ़ लेखक की
निज की और मनपसन्द कहानियां
होने के कारण
पाठक और आलोचक
के लिए महत्त्वपूर्ण भी है

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

आचार्य चतुरसेन

मूल्य : बारह रुपये (12.00)

मेरी प्रिय कहानियां ☐ कहानी-संकलन
चौथा संस्करण ☐ 1980
लेखक ☐ आचार्य चतुरसेन

प्रकाशक ☐ राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6
मुद्रक ☐ आइरिस प्रिंटिंग, शाहदरा, दिल्ली-32

क्रम

अम्बपालिका	7
दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी	24
बार्वचिन	33
हल्दी घाटी में	43
नवाब ननकू	52
ककड़ी की कीमत	67
कहानी खत्म हो गई	72
जीवन्मृत	90
मुहब्बत	106
राजा साहब की कुतिया	119
नहीं	125
युगलांगुलीय	133

अम्बपालिका

अम्ब्रपालिका कहानी आचार्य ने सन् 1928 में लिखी थी। हिन्दी में अम्ब्रपालिका से सम्बन्धित यह सर्वप्रथम ही कहानी है। इसके बाद अम्बपालिका को लेकर अनेक कहानियां और उपन्यास भी लिखे गए तथा आचार्य ने आगे इसी आधार पर अपनी अमर रचना 'वैशाली की नगरवधू' लिखी। जिस समय यह कहानी लिखी गई थी उस समय लेखक की दृष्टि में कथा का आधार बहुत अस्पष्ट था। उसका बाद में जो परिष्कार हुआ वह तो नगरवधू में व्यक्त है। परन्तु यह कहानी बिना संशोधन किए वैसी की वैसी ही दी जा रही है। इसमें लेखक के भीतर का उदीयमान साहित्यकार झांक रहा है।

•

मुजफ्फरपुर से पश्चिम की ओर जो पक्की सड़क जाती है, उसपर मुजफ्फरपुर से लगभग 18-20 मील पर 'बैसौढ़' नामक एक बिलकुल छोटा-सा गांव है, जिसमें 30-40 घर भूमिहार ब्राह्मणों के और कुछ क्षत्रियों के बच रहे हैं। इस गांव के चारों ओर कोसों तक खण्डहर, टीले और पुरानी टूटी-फूटी मूर्तियां ढेर की ढेर मिलती हैं, जो इस बात की स्मृति दिलाती हैं कि यहां कभी कोई बड़ा भारी समृद्धिशाली नगर बसा रहा होगा।

वास्तव में ढाई हज़ार वर्ष पूर्व यहां एक विशाल नगर बसा था, जिसका नाम वैशाली था, और जो प्रबल प्रतापी लिच्छवि-गणतन्त्र के शासन में था।

वैशाली लिच्छवि-गणतन्त्र की एक प्रधान नगरी और रियासत थी। नगर व्यापारियों, जौहरियों, शिल्पकारों और भिन्न-भिन्न प्रकार के देश-विदेश के यात्रियों से परिपूर्ण था। 'श्रेष्ठि-चत्वर' नगर का प्रधान बाज़ार था, जहां जौहरियों और बड़े-बड़े व्यापारियों की कोठियां थीं और जिनकी व्यापारिक शाखाएं समस्त उत्तर भारत में फैली हुई थीं। दुकानदार स्वच्छ परिधान धारण किए, पान कुचरते हंस-हंसकर ग्राहकों से बातें करते। जौहरी पन्ना, लाल, मूंगा, मोती, पुखराज, हीरा और अन्य रत्नों की परीक्षा तथा लेन-देन में व्यस्त रहते थे। निपुण कारीगर अनगढ़ रत्नों को

सान चढ़ाते, स्वर्ण-आभरणों में रंगीन रत्न जड़ते और मोती गूंथते थे। गन्धी लोग केसर के थैले हिलाते थे। चन्दन के तेलों में भिन्न-भिन्न सुगन्ध मिलाकर इत्र बनाए जाते और नागरिक उनका खुला उपयोग करते थे। रेशम और बहुमूल्य महीन मलमल के व्यापारियों की दुकानों पर बगदाद और फारस के व्यापारी लम्बे-लम्बे लबादे पहने, भीड़ की भीड़ पड़े रहते थे। नगर की गलियां संकरी और तंग थीं और उनमें गगनचुम्बी अट्टालिकाएं खड़ी थीं, जिनके अंधेरे तहखानों में इन धन-कुबेरों का बड़ा भारी कोष और द्रव्य रखा रहता था।

सन्ध्या-समय सुन्दर श्वेत बैलों के रथों पर, जिनपर बढ़िया सुनहरा काम हुआ रहता था, नागरिक सैर करने राजपथ पर निकलते थे। इधर-उधर हाथी झूमते हुए बढ़ा करते थे और उनपर उनके अधिपति रत्नाभरणों से सज्जित अपने दासों तथा शरीर-रक्षकों से घिरे हुए चला करते थे।

अभी दिन निकलने में देरी थी। पूर्व की ओर प्रकाश की आभा दिखाई पड़ रही थी, पर मार्ग में अंधेरा था। राजमहल के तोरण पर अभी तक प्रकाश जल रहा था। चारों ओर प्रतिहार पड़े सो रहे थे। उनमें से केवल एक भाला टेककर खड़ा नींद में झूम रहा था। तोरण के इधर-उधर कई कुत्ते पड़े सो रहे थे।

धीरे-धीरे दिन का प्रकाश फैलने लगा। राजवर्गी इधर से उधर आने-जाने लगे। प्रतिहाररक्षी सेना का एक नवीन दल तोरण पर आ पहुंचा। उनमें से एक दण्डधर ने आगे बढ़कर भाले के सहारे खड़े-खड़े ऊंघते मनुष्य को पुकारकर कहा—महानामन ! सावधान होओ और घर जाकर विश्राम करो। महानामन ने सजग होकर अपने दीर्घकाय का और भी विस्तार करके एक ज़ोर की अंगडाई ली और यह कहकर कि—तुम्हारा कल्याण हो, वह अपना भाला धरती पर टेकता हुआ तीसरे तोरण की ओर बढ़ गया। पश्चिम की ओर पुराना प्रासाद और राजमहल का उपवन था, जिसकी देख-रेख महानामन के सुपुर्द थी। यहीं उसकी छोटी-सी कुटिया थी, जहां वह अपनी प्रौढ़ा पत्नी के साथ 17 वर्ष से एकरस—आंधी-पानी, सर्दी-गर्मी में रहता था।

वह नींद में झूमता हुआ ऊंघ रहा था। अब भी प्रभात का प्रकाश धुंधला था। उसने अपनी कुटी के पास एक कदली वृक्ष के नीचे, आम्रकुंज में एक श्वेत वस्तु पड़ी रहने का भान किया। निकट जाकर देखा, एक नवजात शिशु स्वच्छ वस्त्रों में लिपटा अपना अंगूठा चूस रहा है। आश्चर्य

चकित होकर महानामन ने शिशु को उठा लिया। देखा, कन्या है। उसने अपनी स्त्री को पुकारकर उसे वह कन्या देकर कहा—देखो, आज इस प्रकार अपने जीवन की पुरानी साध मिटी।

वह कन्या—उस दरिद्र लिच्छवि महानामन के उस दरिद्रावास में शशिकला की भांति बढ़ने लगी। उसका नाम रक्खा गया अम्बपालिका।

वैशाली से उत्तर-पश्चिम 25 कोस पर, एक छोटे-से गांव में, एक किनारे पर एक साधारण घर था। उसके द्वार पर एक वृद्ध प्रातःकाल बैठा दातुन कर रहा था। पूर्व के द्वार पर पैर की आहट सुनकर उसने पीछे को देखा, एक चम्पक पुष्प की कली के समान एकादशवर्षिया, अति सुन्दरी बालिका, जिसके घुंघराले बाल लहलहा रहे थे, दौड़ती-दौड़ती बाहर आई और वृद्ध को देख उससे लिपटने को लपकी पर पैर फिसलने से गिर गई। वह गिरकर रोने लगी। वृद्ध ने दातुन फेंक, दौड़कर बालिका को उठाया, उसकी धूल झाड़ी; बालिका ने रोना रोककर कहा— बाबा, घर में आटा बिलकुल नहीं है, हम लोग क्या खाएंगे ? वृद्ध ने उसे गोद में उठाते हुए कहा —कुछ चिन्ता नहीं, मैं अभी गेहूं पिसवाने की व्यवस्था करता हूं। बालिका ने कहा—गेहूं का भी तो एक दाना नहीं है। वृद्ध क्षणभर अवाक् रहा। उसने कहा—तब ठहर, मैं अभी शिकार मारकर लाता हूं। बालिका ने रोककर कहा—नहीं, नहीं, मैं पक्षी का मांस नहीं खाऊंगी।

वृद्ध महानामन लिच्छवि था और कन्या थी अम्बपालिका। वृद्ध की पत्नी का स्वर्गवास हुए 8 साल व्यतीत हो गए थे। उसके वाद कन्या की परिचर्या में बाधा पड़ती देख, महानामन ने राज-सेवा छोड़कर अपने ग्राम में आकर बालिका की सेवा-शुश्रूषा अबाधरूप से करने का निश्चय कर लिया था। वह गत आठ वर्षों से इसी गांव में रहता था। अम्बपालिका को उसने इस तरह पाला जैसे पक्षी चुग्गा दे-देकर अपने शिशु पक्षी को पालता है। परन्तु खेद है, धीरे-धीरे उसकी छोटी-सी कमाई की क्षुद्र पूंजी यत्न से खर्च करने पर भी समाप्त हो ही गई। और फिर धीरे-धीरे पत्नी के स्मृति-रूप दो-चार क्षुद्र आभूषण भी उदर-गुहा में पहुंच चुके। अब आज क्या किया जाए ? अब तो आटा भी नहीं, एक दाना गेहूं भी नहीं। वृद्ध की प्राणों की पुतली इस प्रश्न पर चिन्तित हो रही है। यह और भी कष्ट का प्रश्न था। पर वृद्ध ने हंसकर कहा—अच्छा, अच्छा, मैं अभी गेहूं लिए आता हूं। इतना कहकर वृद्ध ने बालिका के तड़ातड़ 3-4 चुम्बन लिए और उसे गोदसे उतारते-उतारते दो बूंद आंसू गिरा दिए। बालिका भीतर गई और वृद्ध चिन्तामग्न बैठ गया। अन्ततः उसने एक बार फिर महाराज

की सेवा में उपस्थित होकर पुरानी नौकरी की याचना करने का निश्चय किया। उसके बाहु का पौरुष तो थक चुका। परन्तु क्या किया जाए, कन्या का विचार सर्वोपरि था। फिर भी वृद्ध के अति गम्भीर होने का यही मात्र कारण न था। लाख वृद्ध होने पर भी उसकी भुजा में बल था: बहुत था। पर उसकी चिन्ता थी: बालिका का अप्रतिम सौन्दर्य। सहस्राधिक बालिकाएं भी क्या उस पारिजात-कुसुम-तुल्य कुन्दकलिका के समान थीं? किस पुष्प में उतनी गन्ध, कोमलता और सौन्दर्य था? उसे भय था कि राज-नियमानुसार वह विवाह से वंचित करके कहीं नगर-वेश्या न बना दी जाए; क्योंकि लिच्छवि-गणतन्त्र में यह कानून था कि राज्य की जो कन्या अत्यधिक सुन्दरी होती थी, उसे किसी एक पुरुष की पत्नी न होने दिया जाकर नागरिकों के लिए सुरक्षित रक्खा जाया करता था। वास्तव में इसी भय से महानामन राजधानी छोड़कर भागा था, जिससे किसीकी दृष्टि उस बालिका पर न पड़े। पर अब उपाय न था। महानामन ने राजधानी में एक बार जाने का निश्चय किया।

वैशाली की ओर जाने वाली सड़क पर वर्षा के कारण बड़ी कीचड़ हो रही थी। कहीं-कहीं तो नालों का पानी कच्ची सड़क को तोड़कर सड़क पर नदी की तरह बह रहा था। अभी वर्षा हो चुकी थी। वृद्ध और उसकी पुत्री दोनों भीग गए थे, पर धीरे-धीरे बढ़े चले जा रहे थे। हवा बन्द थी, गर्मी बढ़ गई थी और दूरस्थ पर्वतों की चोटियों में अस्त होते हुए सूर्य को देख-देखकर वृद्ध डर रहा था। निकट किसी बस्ती के चिह्न न थे। यदि यहीं चौपट में अंधेरा हो गया तो कहां रात कटेगी, बच्ची खाएगी क्या, यही वृद्ध के भय का कारण था। वह लाठी टेकता-टेकता धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। वह स्वयं थक गया था और बालिका तो क्षण-क्षण में विश्राम की इच्छा प्रकट कर रही थी। बालिका ने कहा—पिता! अब मैं और नहीं चल सकती, मेरे पैरों में देखो, लोहू बह रहा है, वे फट गए हैं। वृद्ध ने स्नेह से उसे चुमकारकर कहा—बस, अब थोड़ी दूर और; निकट ही कहीं गांव या बस्ती मिलने पर ठहरने में सुभीता रहेगा। पर बालिका और कुछ पग चलकर मार्ग में ही एक ऊंची जगह पर बैठ गई। वृद्ध भी निरुपाय हो, पास ही बैठ गया। अंधकार ने चारों ओर से उन्हें घेर लिया।

सहसा बालिका ने चौंककर कहा—पिताजी, देखो, घोड़ों की टाप का शब्द सुनाई दे रहा है! बुड्ढे ने उठकर दूर तक दृष्टि करके देखा। सड़क के निकट एक घना सेमल का वृक्ष था, जिसके नीचे घोर अंधकार था। वृद्ध कन्या का हाथ पकड़, वहीं जा छिपा। आकाश में अब भी बादल घिर

रहे थे और फिर ज़ोर की वर्षा होने के रंग-ढंग दीख पड़ते थे। बीच-बीच में बिजली भी चमक जाती। थोड़ी देर बाद बहुत-से सवार वहां तक आ पहुंचे। वर्षा भी शुरू हो गई। सवारों ने निश्चय किया कि उस वृक्ष के नीचे आश्रय लें।

वृद्ध भय से बालिका को छाती में छिपाए वृक्ष की जड़ से चिपककर बैठ गया। सहसा बिजली की चमक में अश्वारोहियों ने वृक्ष के निकट मनुष्य-मूर्ति देखकर कहा—अरे! वृक्ष के निकट यह कौन है? वृद्ध वहां से हटकर चुपचाप खेत में जाने लगा। तत्क्षण एक बर्छा आकर उसकी छाती को विदीर्ण कर गया। वृद्ध एक चीत्कार करके धरती पर गिर गया। बालिका ज़ोर से चिल्ला उठी।

अश्वारोही दल ने निकट जाकर देखा—मृत पुरुष वृद्ध और निरस्त्र है। पर कन्या को देखते ही बर्छा फेंकने वाले सवार ने कहा—वाह! बूढ़े को मारकर रत्न मिला! इसमें किसीका साझा नहीं है?

बालिका भय और शोक से चिल्ला उठी। अश्वारोही ने उसकी परवा न कर उसे घोड़े पर रख लिया और वे आगे बढ़।

वैभवशालिनी वैशाली का जो 'श्रेष्ठि-चत्वर' नामक बाज़ार था। उसके उत्तर कोण पर एक विशाल प्रासाद, जिसके गुम्बजों का प्रकाश रात्रि को गङ्गा पार से भी दीखता था। बाहर का सिंहद्वार विशाल पत्थरों का बनाया गया था, जिसे उठाना और जोड़ना दैत्यों का ही काम हो सकता था। इन पत्थरों पर स्थापत्यकला और शिल्प की सूक्ष्म बुद्धि खर्च की गई थी। ड्योढ़ी पर गहरा हरा रंग किया हुआ था और ऊंचे महराबदार फाटक पर फूलों की गुंथी हुई सुन्दर मालाएं लटक रही थीं। पहले आंगन में प्रवेश करने पर श्वेत अट्टालिकाओं की पंक्ति दीख पड़ती थी। उनकी दीवारों पर कांच की तरह चमकदार श्वेत पलस्तर किया गया था। सीढ़ियों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के खुदरंग बहुमूल्य पत्थर लगे थे, और खिड़कियों में बिल्लौर के किवाड़ थे, जिनमें श्रेष्ठि-चत्वर की बहार बैठे ही बैठे दीख पड़ती थी। दूसरे आंगन में गाड़ी, बैल, घोड़े, हाथी बंधे थे और महावत उन्हें चावल-घी खिला रहे थे। तीसरे आंगन में अतिथिशाला तथा आगत जनों के ठहरने का प्रबन्ध था। यहां बहुत सुन्दर विशाल पत्थरों के खम्भों पर मेहराब खड़े हुए थे। चौथे आंगन में नाट्यशाला और गायनभवन था। पांचवें आंगन में भिन्न-भिन्न प्रकार के शिल्पकार और जौहरी लोग नाना प्रकार के आभूषण बना और रत्नों को घिस रहे थे। छठे आंगन में भिन्न-भिन्न देश के पशु-पक्षियों का अद्भुत संग्रह था। सातवां आंगन बिलकुल

श्वेत पत्थर का बना था, और उसमें सुनहरा काम हो रहा था। इसमें दो भीमकाय सिंह स्वर्ण की मेखलाओं से दृढ़तापूर्वक बंधे थे और चांदी के पात्रों में पानी भरा उनके निकट धरा था। गृहस्वामिनी अम्बपालिका इसी कक्ष में विराजती थी।

सन्ध्या हो गई थी। परिचारक और परिचारिकाएं दौड़-धूप कर रही थीं, कोई सुगन्धित जल आंगन में छिड़क रही थी, कोई धूप जलाकर भवन को सुवासित कर रही थी, कोई सहस्र दीप-गुच्छ में सुगन्धित तेल डालकर प्रकाशित करने में व्यस्त थी। बहुत-से माली तोरण और अलिन्द पर ताज़े पुष्पों के गुलदस्ते और मालाओं को सजा रहे थे। अलिन्द में दण्डधर अपने-अपने स्थानों पर भाला टेके स्थिर भाव से खड़े थे। द्वारपाल तोरण पर अपने द्वार-रक्षक दल के साथ सशस्त्र उपस्थित था।

क्षणभर बाद प्रासाद भांति-भांति के रंगीन प्रकाशों से जगमगा उठा। भांति-भांति के रंगीन फव्वारे चलने लगे और उन पर प्रकाश का प्रतिबिम्ब इन्द्र धनुष की बहार दिखाने लगा। धीरे-धीरे प्रतिष्ठित नागरिक कोई पालकी में, कोई रथ पर और कोई हाथी पर चढ़कर प्रथम तोरण पारकर आने लगे। परिचारकगण दौड़-दौड़कर अतिथियों को सादर उतारकर भीतरी अलिन्द में पहुंचाने तथा उनकी सवारियों की व्यवस्था करने लगे। हाथी-घोड़े, रथ, पालकी आदि वाहनों का तांता लग गया। उनकी भीड़ से बाहर का विशाल प्राङ्गण भर गया।

सातवें तोरण के भीतर श्वेत पत्थर के एक विशाल सभा-भवन में अम्बपालिका नागरिक युवकों की अभ्यर्थना कर रही थी। वह भवन एक टुकड़े के 64 हरे रंग के पत्थर के खम्भों पर निर्मित हुआ था, और इस पर रंगीन रत्नों को जड़कर फूल-पत्ती, पक्षी तथा वन के दृश्य बनाए गए थे। छत पर स्वर्ण का पत्तर मढ़ा था, जहां पर बारीक खुदाई और रंगीन मीना का काम हो रहा था। इस विशाल भवन में दुग्ध-फेन के समान उज्ज्वल वर्ण का अति मुलायम और बहुमूल्य बिछावन बिछा था। थोड़े-थोड़े अन्तर से बहुत-सी वेदियां, पृथक् बनी थीं, जहां कोमल उपधान, मद्य के स्वर्ण-पात्र और प्यालियां, जुआ खेलने के पासे तथा अन्य विनोद-सामग्री, भिन्न-भिन्न प्रकार के ग्रन्थ, बहुमूल्य चित्र तथा अन्य बहुत-सी मनोरंजन की सामग्री थीं।

महाप्रतिहार अलिन्द तक अतिथि युवकों को लाता, वहां से प्रधान परिचारिका उसे कक्ष तक ले आती। कक्ष-द्वार पर स्वयं अम्बपालिका साक्षात् रति के समान आगत जनों का हाथ पकड़कर स्वागत करती, एक वेदी पर ले जाकर बैठाती, सुगन्ध और पुष्प-मालाओं से सत्कार करती तथा अपने हाथों से मद्य ढालकर पिलाती थी। उस स्वर्ग-सदन में, रूप,

यौवन और जीवन के आलोक में अर्द्धरात्रि तक नित्य ही माधुर्य और आनन्द का प्रवाह बहता था। सैंकड़ों दासियां दौड़-धूप करके याचित वस्तु तत्काल जुटा देतीं। फिर कुछ ठहरकर संगीत-लहरी उठती। कोमल तन्तु-वाद्य गम्भीर मृदंग के साथ वैशाली के श्रेष्ठि पुत्रों, राजवर्गियों और कुमारों के हृदय को मसोस डालता था। वाद्य की ताल पर मोम की पुतली के समान कुमारियां मधुर स्वर में स्वर-ताल और मूर्च्छनामय संगीत-गान करतीं, और नर्तकियां ठुमककर नाचती थीं। उस स्वप्न-सौन्दर्य के दृश्य को युवक सुगन्धित मद्य के घूंट के साथ पीकर अपने जन्म को धन्य मानते थे।

अम्बपालिका अब 20 वर्ष की पूर्ण युवती थी। उसका यौवन और सौन्दर्य मध्याकाश में था। और लिच्छवि गणतन्त्र के राजा ही नहीं, मगध, कोशल और विदेह के महाराजा तक उसके लिए सदैव अभिलाषी बने रहते थे। इन सभी महानृपतियों की ओर से रत्न, अस्त्र, हाथी आदि भेंट में आते रहते थे और अम्बपालिका अपनी कृपा और प्रेम के चिह्न-स्वरूप कभी-कभी ताज़े फूलों की एकाध माला तथा कुछ गन्ध द्रव्य उन्हें प्रदान कर दिया करती थी।

विधाता ने मानो उसे स्वर्ण से बनाया था। उसका रंग गोरा ही न था, उसपर सुनहरी प्रभा थी—जैसे चम्पे की अविकसित कली में होती है। उसके शरीर की लचक, अंगों की सुडौलता वर्णन से बाहर की बात थी। उस सौन्दर्य में विशेषता यह थी कि समय का अत्याचार भी उस सौन्दर्य को नष्ट न कर सकता था। जैसे मोती का पर्त उतार देने से नई आभा, नया पानी दमकने लगता है, उसी प्रकार अम्बपालिका का शरीर प्रतिवर्ष निखार पाता था। उसका कद कुछ लम्बा, देह मांसल और कुच पीन थे। तिसपर उसकी कमर पतली इतनी थी कि उसे कटिबन्धन बांधने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग चैतन्य थे, मानो प्रकृति ने उन्हें नृत्य करने और आनन्द-भोग करने को बनाया था।

उसके नेत्रों में सूक्ष्म लालसा की झलक और दृष्टि में गज़ब की मदिरा भर रही थी। उसका स्वभाव सतेज था, चितवन में दृढ़ता, निर्भीकता, विनोद और स्वेच्छाचारिता साफ झलकती थी। उसे देखते ही आमोद-प्रमोद की अभिलाषा प्रत्येक पुरुष के हृदय में उत्पन्न हो जाती थी।

जैसा कहा जा चुका है, उसकी रंगत पर एक सुनहरी झलक थी, गाल कोमल और गुलाबी थे, ओठ लाल और उत्फुल्ल थे, मानो कोई पका हुआ रसीला फल चमक रहा हो। उसके दांत हीरे की तरह स्वच्छ, चमकदार और अनार की पंक्ति की तरह सुडौल, कुच पीन तथा अनीदार थे। नाक पतली, गर्दन हंस जैसी, कन्धे सुडौल, बाहु मृणाल जैसी थी। सिर के बाल

काले, लम्बे, घुंघराले तथा रेशम से भी मुलायम थे। आंखें काली और कंटीली, उंगलियां पतली और मुलायम थीं। उनपर उसके गुलाबी नाखूनों की बड़ी बहार थी। पैर छोटे और सुन्दर थे। जब वह ठसक के साथ उठकर खड़ी हो जाती तो लोग उसे एकटक देखते रह जाते थे। उसकी भुजाओं और देह का पूर्व भाग सदा खुला रहता था।

वैशाली में बड़ी भारी बेचैनी फैल गई। अश्वारोही दल के दल नगर के तोरण से होकर नगर के बाहर निकल रहे थे। प्रतिहार लोग और किसी-को न बाहर निकलने देते थे और न भीतर घुसने देते थे। तोरण के इधर-उधर बहुत-से नागरिक सेना का यह अकस्मात् प्रस्थान देख रहे थे। एक पुरुष ने पूछा – क्यों भाई, जानते हो यह सेना कहां जा रही है? उसने कहा—न, यह कोई नहीं जानता। अश्वारोही दल निकल गया। पीछे कई सेना-नायक धीरे-धीरे परामर्श करते चले गए।

क्षण-भर में संवाद फैल गया। मगध के प्रतापी सम्राट् शिशुनागवंशी बिम्बसार ने वैशाली पर चढ़ाई की। गंगा के दक्षिण छोर पर दुर्जय मागध सेना दृष्टि के उस छोर से इस छोर तक फैली हुई थी। इस सेना में 10 हज़ार हाथी, 50 हज़ार अश्वारोही और पांच लाख पैदल थे।

वैशाली के लिच्छवि-गणतन्त्र का प्रताप भी साधारण न था। गंगा के उत्तर कोण पर देखते-देखते सैन्य-समूह एकत्रित हो गया। लिच्छवियों के पास 8 हज़ार हाथी, 1 लाख अश्वारोही और 6 लाख पैदल थे।

तीन दिन तक दोनों दल आमने-सामने डटे रहे। तीसरे दिन लिच्छवि लोगों ने देखा, उस पार डेरों की संख्या कम हो गई है। निपुण सहस्रों सैनिक घाट से पार आने की तैयारी कर रहे हैं, यह समझने में देर न लगी। दोपहर होते-होते मगध-सेना गंगा पार करने लगी। लिच्छवि-सेना चुपचाप खड़ी रही। ज्यों ही कुछ सेना ने भूमि पर पांव रखा त्यों ही वैशाखी की सेना जय-जयकार करते बढ़ चली, मानो सहस्र उल्कापात हुए हों। मेघ-संघर्षण की तरह घोर गर्जना करके दोनों सेनाएं भिड़ गईं। मागध-सेना की गति रुक गई। बाण, बर्छे और तलवारों की प्रलय मच गई। उस दिन, दिन-भर संग्राम रहा। सूर्यास्त देख, दोनों सेनाएं पीछे को फिरीं।

दो मास से नगर का घेरा जारी है। बीच-बीच में युद्ध हो जाता है। कोई पक्ष निर्बल नहीं होता। नगर की तीन दिशाएं मागध-शिविर से घिरी हैं। बीच में जो सबसे बड़ा डेरा है, उसके ऊपर सोने का गरुड़ध्वज अस्त

होते सूर्य की किरणों से अग्नि की तरह दमक रहा है। उसके आगे एक स्वर्ण-पीठ पर गौर वर्ण सम्राट् विराजमान हैं। निकट एक-दो विश्वासी पार्श्वद हैं। सम्राट् अति सुन्दर, बलिष्ठ और गम्भीरमूर्ति हैं। नेत्रों में तेज और स्नेह, दृष्टि में वीरत्व और औदार्य तथा प्रतिभा में अदम्य तेज प्रकट हो रहा है। सम्राट् आधे लेटे हुए कुछ मन्त्रणा कर रहे हैं। एक कर्णिक नीचे बैठा उनके आदेशानुसार लिखता जाता है। एक दण्डधर ने आगे बढ़कर पुकारकर कहा—महानायक युवराज भट्टारकपादीय गोपालदेव तोरण पर उपस्थित हैं। सम्राट् ने चौंककर उधर देखा और भीतर बुलाने का संकेत किया। साथ ही कर्णिक और मन्त्री को विदा किया।

गोपालदेव ने तलवार म्यान से खींच शीश से लगाई और फिर विनम्र निवेदन किया—महाराजाधिराज की आज्ञानुसार सब व्यवस्था ठीक है। देवश्री पधारने का कष्ट करें। सम्राट् के नेत्रों में उत्फुल्लता उत्पन्न हुई। वे उठकर वस्त्र पहनने के लिए पट-मण्डप में घुस गए।

वैशाली के राजपथ जनशून्य थे, दो प्रहर रात्रि जा चुकी थी, युद्ध के आतंक ने नगर के उल्लास को मूर्च्छित कर दिया था। कहीं-कहीं प्रहरी खड़े उस अंधकारमयी रात्रि में भयानक भूत-से प्रतीत होते थे। धीरे-धीरे दो मनुष्य मूर्तियां अंधकार का भेदन करती हुईं वैशाली के गुप्त द्वार के निकट पहुंचीं। एक ने द्वार पर आघात किया, भीतर प्रश्न हुआ—संकेत ?

मनुष्यमूर्ति ने कहा—अभिनय !

हल्की चीत्कार करके द्वार खुल गया। दोनों मूर्तियां भीतर घुसकर राजपथ छोड़, अंधेरी गलियों की अट्टालिकाओं की परछाईं में छिपती-छिपती आगे बढ़ने लगीं। एक स्थान पर प्रहरी ने बाधा देखकर पूछा—कौन ? एक व्यक्ति ने कहा—आगे बढ़कर देखो। प्रहरी निकट आया। हठात् दूसरे व्यक्ति ने उसका सिर धड़ से जुदा कर दिया। दोनों फिर आगे बढ़े। अम्बपालिका के द्वार पर अन्ततः उनकी यात्रा समाप्त हुई। द्वार पर एक प्रतिहार मानो उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। संकेत करते ही उसने द्वार खोल दिया और आगन्तुकगण को भीतर लेकर द्वार बन्द कर लिया।

आज इस विशाल राजमहल सदृश भवन में सन्नाटा था। न रंग-बिरंगी रोशनी, न फव्वारे, न दास-दासी गणों की दौड़-धूप। दोनों व्यक्ति चुपचाप प्रतिहार के साथ जा रहे थे। सातवें अलिन्द को पार करने पर देखा, एक और मूर्ति एक खम्भे के सहारे खड़ी है। उसने आगे बढ़कर कहा—इधर से पधारिए श्रीमान् ! प्रतिहार वहीं रुक गया। नवीन व्यक्ति स्त्री थी और वह सर्वांग काले वस्त्र से ढांपे हुए थी। दोनों आगन्तुक कई प्रांगण

और अलिन्द पार करते हुए कुछ सीढ़ियां उतरकर एक छोटे-से द्वार पर पहुंचे जो चांदी का था और जिसपर अतिशय मनोहर जाली का काम हो रहा था और उसी जाली में से छन-छनकर रंगीन प्रकाश बाहर पड़ रहा था।

द्वार खोलते ही देखा : एक बहुत बड़ा कक्ष भिन्न-भिन्न प्रकार की सुख-सामग्रियों से परिपूर्ण था। यद्यपि उतना बड़ा नहीं, जहां नागरिक जनों का प्राय: स्वागत होता था, परन्तु सजावट की दृष्टि से इस कक्ष के सम्मुख उसकी गणना नहीं हो सकती थी। यह समस्त भवन श्वेत और काले पत्थरों से बना था। और सर्वत्र ही सुनहरी पच्चीकारी का काम हो रहा था। उसमें बड़े-बड़े बिल्लौर के अठपहलू अमूल्य खम्भे लगे थे, जिनमें मनुष्य का हूबहू प्रतिबिम्ब सहस्रों की संख्याओं में दीखता था। बड़े-बड़े और भिन्न-भिन्न भावपूर्ण चित्र टंगे थे। सहस्र दीप-गुच्छों में सुगन्धित तेल जल रहा था। समस्त कक्ष भीनी सुगन्ध से महक रहा था। धरती पर एक महामूल्यवान् रंगीन बिछावन था जिसपर पैर पड़ते ही हाथ भर धंस जाता था। बीचोंबीच एक विचित्र आकृति की सोलह-पहलू सोने की चौकी पड़ी थी, जिसपर मोर-पंख के खम्भों पर मोतियों की झालर लगा एक चन्दोवा तन रहा था। और पीछे रंगीन रेशम के परदे लटक रहे थे, जिसमें ताज़े पुष्पों का शृंगार बड़ी सुघड़ाई से किया गया था। निकट ही एक छोटी-सी रत्न-जटित तिपाई पर मद्य-पात्र और पन्ने का बड़ा-सा पात्र धरा हुआ था।

हठात् सामने का परदा उठा और उसमें वह रूप-राशि प्रकट हुई जिसके बिना अलिन्द शून्य हो रहा था। उसे देखते ही आगन्तुकगण में से एक तो धीरे-धीरे पीछे हटकर कक्ष से बाहर हो गया, दूसरा व्यक्ति स्तम्भित-सा खड़ा रहा। अम्बपालिका आगे बढ़ी। वह बहुत महीन श्वेत रेशम की पोशाक पहने हुए थी। वह इतनी बारीक थी कि उसके आर-पार साफ दीख पड़ता था। उसमें से छनकर उसके सुनहरे शरीर की रंगत अपूर्व छटा दिखा रही थी। पर यह कमर तक ही था। वह चोली या कोई दूसरा वस्त्र नहीं पहने थी। इसलिए उसकी कमर के ऊपर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग साफ दीख पड़ते थे।

विधाता ने उसे किस क्षण में गढ़ा था ! हमारी तो यह धारणा है कि कोई चित्रकार न तो वैसा चित्र ही अंकित कर सकता था और न कोई मूर्तिकार वैसी मूर्ति ही बना सकता था।

उस भुवन-मोहिनी की छटा आगन्तुक के हृदय को छेदकर पार हो गई। गहरे काले रंग के बाल उसके उज्ज्वल और स्निग्ध कन्धों पर लहरा रहे थे। स्फटिक के समान चिकने मस्तक पर मोतियों का गुथा हुआ

आभूषण अपूर्व शोभा दिखा रहा था। उसकी काली और कंटीली आंखें, तोते के समान नुकीली नाक, बिम्बफल जैसे अधर-ओष्ठ और अनारदाने के समान उज्ज्वल दांत, गोरा और गोल चिबुक बिना ही शृंगार के अनुराग और आनन्द बखेर रहा था। अब से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व की वह वैशाली की वेश्या ऐसी ही थी।

मोती की कोर लगी हुई सुन्दर ओढ़नी पीछे की ओर लटक रही थी और इसलिए उसका उन्मत्त कर देने वाला मुख साफ देखा जा सकता था। वह अपनी पतली कमर में एक ढीला-सा बहुमूल्य रंगीन शाल लपेटे हुए थी। हंस के समान उज्ज्वल गर्दन में अंगूर के बराबर मोतियों की माला लटक रही थी और गोरी-गोरी गोल कलाइयों में नीलम की पहुंची पड़ी हुई थी।

उस मकड़ी के जाले के समान बारीक उज्ज्वल परिधान के नीचे, सुनहरे तारों की बुनावट का एक अद्भुत घाघरा था, जो उस प्रकाश में बिजली की तरह चमक रहा था। पैरों में छोटी-छोटी लाल रंग की उपानत् थीं, जो सुनहरे फीते से कस रही थीं।

उस समय कक्ष में गुलाबी रंग का प्रकाश हो रहा था। उस प्रकाश में अम्बपालिका का मानो परदा चीरकर इस रूप-रंग में प्रकट होना आगन्तुक व्यक्ति को मूर्तिमती मदिरा का अवतरण-सा प्रतीत हुआ। वह अभी तक स्तब्ध खड़ा था। धीरे-धीरे अम्बपालिका आगे बढ़ी। उसके पीछे 16 दासियां एक ही रूप और रग की, मानो पाषाण-प्रतिमाएं ही आगे बढ़ रही थीं।

अम्बपालिका धीरे-धीरे आगे बढ़कर आगन्तुक के निकट आकर झुकी और फिर घुटने के बल बैठ, उसने कहा—परमेश्वर, परम वैष्णव, परम भट्टारक, महाराजाधिराज की जय हो ! इसके बाद उसने सम्राट् के चरणों में प्रणाम करने को सिर झुका दिया। दासियां भी पृथ्वी पर झुक गईं।

आगन्तुक महाप्रतापी मगध-सम्राट् बिम्बसार थे। उन्होंने हाथ बढ़ा कर अम्बपालिका को ऊपर उठाया। अम्बपालिका ने निवेदन किया—महाराजाधिराज पीठ पर विराजें। सम्राट् ने ऊपर का परिच्छद उतार फेंका, वे पीठ पर विराजमान हुए।

अम्बपालिका ने नीचे धरती में बैठकर सम्राट् का गन्ध, पुष्प आदि से सत्कार किया। इसके बाद उसने अपनी मद-भरी आंखें सम्राट् पर डालकर कहा—महाराजाधिराज ने बड़ी अनुकम्पा की, बड़ा कष्ट किया।

सम्राट् ने किंचित् मोहक स्वर में कहा—अम्बपाली ! यदि मैं यह कहूं कि केवल विनोद के लिए आया हूं तो यह यथार्थ बात नहीं। तुम्हारे रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर स्थिर नहीं रह सका, और इस कठिन युद्ध में व्यस्त

रहने पर भी तुम्हें देखने के लिए शत्रुपुरी में घुस आया, परन्तु तुम्हारा प्रबन्ध धन्य है।

अम्बपालिका—(लज्जित-सी होकर ज़रा मुस्कराकर) मैं पहले ही सुन चुकी हूं कि देव स्त्रियों की चाटुकारी में बड़े प्रवीण हैं।

सम्राट्—चाटुकारी नहीं, अम्बपालिके ! तुम वास्तव में रूप और गुण में अद्वितीय हो।

अम्बपालिका—श्रीमान्, मैं कृतार्थ हुई ! इसके बाद वह अपने मुक्ता-विनिन्दित दांतों की छटा दिखाते हुए सम्राट् की सेवा में खड़ी हुई। सम्राट् ने प्याला ले और उसे खींचकर बगल में बैठा लिया। संकेत पाते ही दासियों ने क्षणभर में गायन-वाद्य का संरजाम जुटा दिया। कक्ष संगीत-लहरी में डूब गया और उस गम्भीर निस्तब्ध रात्रि में मगध के प्रतापी सम्राट् उस एक वेश्या पर अपने साम्राज्य को भूल बैठे !

एक वर्ष बीत गया। प्रतापी लिच्छवि-राज मगध साम्राज्य के आगे मस्तक नत करने को बाध्य हुए। अब वैशाली में उमंग न थी। अम्बपालिका का द्वार सदैव बन्द रहता था। द्वार पर कड़ा पहरा था। कोई व्यक्ति न उसे देख सकता था, न उससे मिल सकता था। उसके बहुत-से युवक मित्र उस युद्ध में निहत हुए थे। पर जो बच रहे थे। वे अम्बपाली के इस परिवर्तन पर आश्चर्यान्वित थे। वे किसी भी तरह उसका साक्षात् न कर सकते थे। दूर-दूर तक यह बात फैल गई थी।

अम्बपालिका के सहस्रावधि वेतन-भोगी दास-दासी, सैनिक और अनुचरों में से भी केवल दो व्यक्ति थे जो अम्बपालिका को देख सकते और उससे बात कर सकते थे। एक प्रधान परिचारिका यूथिका, दूसरा एक वृद्ध दण्डधर जिसे भीतर-बाहर सर्वत्र आने की स्वतन्त्रता थी। सम्राट् का आगमन केवल इन्हीं दोनों को मालूम था और वे दोनों ही यह रहस्य भी जानते थे कि अम्बपालिका को सम्राट् से गर्भ है।

यथासमय पुत्र प्रसव हुआ। यह रहस्य भी केवल इन्हीं दो व्यक्तियों पर ही प्रकट हुआ। और वह पुत्र उसी दण्डधर ने गुप्त रूप से राजधानी ले जाकर मगध सम्राट् की गोद में डालकर, अम्बपालिका का अनुरोध सुनाकर कहा—महाराजाधिराज की सेवा में मेरी स्वामिनी ने निवेदन किया है कि उनकी तुच्छ भेंट-स्वरूप मगध के भावी सम्राट् आपके चरणों में समर्पित हैं। सम्राट् ने शिशु को सिंहासन पर डालकर वृद्ध दण्डधर से उत्फुल्ल नयन से कहा—मगध के सम्राट् को झटपट अभिवादन करो। दण्डधर ने कोश से तलवार निकाल, मस्तक पर लगाई और तीन बार जय-

घोष करके तलवार शिशु के चरणों में रख दी। सम्राट् ने तलवार उठाकर वृद्ध की कमर में बांधते-बांधते कहा—अपनी स्वामिनी को मेरी यह तुच्छ भेंट देना। यह कहकर उन्होंने एक वस्तु वृद्ध के हाथ में चुपचाप दे दी। वह वस्तु क्या थी, यह ज्ञात होने का कोई उपाय नहीं।

भगवान् बुद्ध वैशाली में पधारे हैं और अम्बपालिका की बाड़ी में ठहरे हैं। आज हठात् अम्बपालिका के महल में हलचल मच रही है। सभी दास-दासी, प्रतिहार, द्वारपाल दौड़-धूप कर रहे हैं। हाथी, घोड़े, पालकी रथ सज रहे हैं। सवार शस्त्र-सज्जित हो रहे हैं। अम्बपालिका भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ बाड़ी में जा रही है। एक वर्ष बाद आज वह फिर सर्वसाधरण के सम्मुख निकल रही है। समस्त वैशाली में यह समाचार फैल गया है। लोग झुण्ड के झुण्ड उसे देखने राजमार्ग पर डट गए हैं। अम्बपालिका एक श्वेत हाथी पर सवार होकर धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है। दासियों का पैदल झुण्ड उसके पीछे है, उसके पीछे अश्वारोही दल है और उसके बाद हाथियों पर भगवान् की पूजा-सामग्री। सबसे पीछे बहुत-से वाहन, कर्मचारी और पौरगण।

अम्बपालिका एक साधारण पीत-वर्ण परिधान धारण किए अधोमुख बैठी है। एक भी आभूषण उसके शरीर पर नहीं है। बाड़ी से कुछ दूर ही उसने सवारी रोकने की आज्ञा दी। वह पैदल भगवान् के निवास तक पहुंची, पीछे 100 दासियों के हाथ में पूजन-सामग्री थी।

तथागत बुद्ध की अवस्था अस्सी को पार कर गई थी। एक गौरवर्ण, दीर्घकाय, श्वेतकेश, कृश, किन्तु बलिष्ठ महापुरुष पद्मासन से शान्त मुद्रा में एक सघन वृक्ष की छाया में बैठे थे। सहस्रावधि शिष्यगण दूर तक मुण्डित-शिर और पीत वस्त्र धारण किए स्तब्ध-से श्रीमुख के प्रत्येक शब्द को हृत्पटल पर लिख रहे थे। आनन्द नामक शिष्य ने निवेदन किया—प्रभु! अम्बपालिका दर्शनार्थ आई है। तथागत ने किंचित् हास्य से अपने करुण नेत्र ऊपर उठाए। अम्बपालिका धरती में लोटकर कहने लगी—प्रभो! त्राहि माम्! त्राहि माम्!

भगवान् ने कहा—कल्याण! कल्याण! आनन्द ने कहा—उठो अम्बपाली! महाप्रभु प्रसन्न हैं। अम्बपाली ने यथाविधि भगवान् का अर्घ्य-दान, पाद्य, मधुपर्क से पूजन किया और चरण-रज नेत्रों में लगाई, फिर हाथ बांध सम्मुख खड़ी हो गई।

भगवान् ने हंसकर कहा—अब और क्या चाहिए अम्बपाली?

"प्रभो! भगवन्! इस अपदार्थ का आतिथ्य स्वीकार हो, इन चरण-

कमलों की देवदुर्लभ रज-कण किङ्करी की कुटिया को प्रदान हो।"

प्रभु ने करुण स्वर में कहा—तथास्तु ! भिक्षुगण सहस्र कण्ठ से जयोल्लास में चिल्ला उठे। परन्तु यह क्या ? उस नाद को विदीर्ण करता हुआ एक और नाद उठा। भगवान् ने पूछा—आनन्द ! यह क्या है ? "प्रभो ! लिच्छविराजवर्ग और अमात्यवर्ग श्रीपाद-पद्म के दर्शनार्थ आ रहा है।" प्रभु हंस पड़े। अम्बपालिका हट गई। प्रतापी लिच्छविराजगण, राजकुमार, अमात्यवर्ग और अन्तःपुर ने एक साथ ही भगवान् के चरणों में महान् मस्तक झुका दिए। भगवान् ने कहा—कल्याण ! कल्याण ! !

महाराज ने पद-धूलि मुकुट पर लगाकर कहा—महाप्रभु ! यह तुच्छ राजधानी इन चरणों के पधारने से कृतकृत्य हुई। परन्तु प्रभो ! यह वेश्या की बाड़ी है, श्रीचरणों के योग्य नहीं। प्रभु के लिए राजप्रासाद प्रस्तुत है और राजवंश प्रभु-पद-सेवा को बहुत उत्सुक है। भगवान् ने हंसकर कहा —तथागत के लिए वेश्या और राजा में क्या अन्तर है ? तथागत समदृष्टि है।

"प्रभो ! तब कल का आतिथ्य राज-परिवार को प्रदान कर कृतार्थ करें।"

"वह तो मैं अम्बपाली का स्वीकार कर चुका !"

राजा निरुत्तर हुए। वे फिर प्रणाम कर लौटे। कुछ श्वेत वस्त्र धारण किए थे, कुछ लाल और कुछ आभूषण पहने थे।

अम्बपालिका रथ में बैठकर लौटी। उसने आज्ञा दी—मेरा रथ लिच्छवि महाराजाओं के बराबर हांको। उनके पहिये के बराबर मेरा पहिया और उनके धुरे के बराबर मेरा धुर रहे, तथा उनके घोड़े के बराबर मेरा घोड़ा।

लिच्छवियों ने देखकर क्रोध-मिश्रित आश्चर्य से पूछा—अम्बपालिके, यह क्या बात है ? तू हम लोगों के बराबर अपना रथ हांक रही है ?

उसने उत्तर दिया—मेरे प्रभु ! मैंने तथागत और उसके शिष्यवर्ग को भोजन का निमन्त्रण दिया है और वह उन्होंने स्वीकार किया है।

उन्होंने कहा—हे अम्बपाली ! हमसे एक लाख स्वर्ण-मुद्रा ले और यह भोजन हमें कराने दे।

"मेरे प्रभु, यह सम्भव ही नहीं है !"

"तब 100 ग्राम ले और यह निमन्त्रण हमें बेच दे।"

"नहीं स्वामी ! कदापि नहीं।"

"आधा राज्य ले और यह निमन्त्रण हमें दे दे।"

"मेरे प्रभु ! आप एक तुच्छ भूखण्ड के स्वामी हैं, पर यदि समस्त

भूमण्डल के चक्रवर्ती भी होते और अपना समस्त साम्राज्य मुझे देते तो भी मैं ऐसी कीर्ति की जेवनार को नहीं बेच सकती थी।"

लिच्छवि राजाओं ने तब अपना हाथ पटककर कहा—हाय ! अम्बपालिका ने हमें पराजित कर दिया, अम्बपालिका हमसे बढ़ गई। अम्बपालिके ! तब तुम स्वच्छन्दता से हमसे आगे रथ हांको। अम्बपालिका ने रथ बढ़ाया। गर्द का एक तूफान पीछे रह गया।

दस सहस्र भिक्षुओं के साथ भगवान् बुद्ध ने अम्बपालिका के प्रासाद को आलोकित किया। वैशाली के राजमार्ग में नगर के प्राणी आ जूझे थे। महापुरुष बुद्ध और उनके वीतरागी भिक्षु भूमि पर दृष्टि दिए पैदल धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। नगर के श्रेष्ठिगण दूकानों से उठ-उठकर मार्ग की भूमि को भगवान् के चरण रखने से पूर्व अपने उत्तरीय से झाड़ रहे थे। कोई नागरिक भीड़ से निकलकर पथ पर अपने बहुमूल्य शाल बिछा रहे थे। महाप्रभु बिना कुछ कहे एकरस धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। वह महान् संन्यासी, प्रबल वीतरागी, महाप्राण वृद्ध, पुरुष श्रेष्ठ जय-जयकार की प्रचण्ड घोषणा से भी जरा भी विचलित नहीं हो रहा था। उसकी दृष्टि मानो पृथ्वी में पाताल तक घुस गई थी। और स्त्रियां झरोखों से खील और पुष्प-वर्षा कर रही थीं। अम्बपालिका का तोरण आते ही चार दण्डधरों ने दौड़कर पथ पर कौशेय बिछा दिया। द्वार में प्रवेश करने पर सर्वत्र कौशेय बिछा था। अनगिनत कर्मचारी भिक्षुगण के सम्मानार्थ दौड़ पड़े। पीत-वसनधारी मुण्डित भिक्षु नक्षत्रों की तरह उस विशाल प्राङ्गण में, महाजन-समूह में चमक रहे थे।

अतिथिशाला में भगवान् के पहुंचते ही अम्बपालिका ने 200 दासियों के साथ स्वयं आकर तथागत के चरणों में सिर झुकाया और वहां से वह अपने अञ्चल से पथ की धूल झाड़ती हुई प्रभु को भीतरी अलिन्द तक ले गई। इस समय प्रभु के साथ केवल आनन्द चल रहे थे।

प्राङ्गण के मध्य में एक चन्दन की चौकी पर शुद्ध आसन बिछा था। अम्बपालिका के अनुरोध पर प्रभु वहां विराजमान हुए। अम्बपालिका ने अर्घ्य-पाद्य दान करके भोजन प्रस्तुत करने की आज्ञा मांगी। आज्ञा मिलते ही अम्बपालिका स्वयं स्वर्ण-थाल में भोजन ले आई। अनेक प्रकार के चावल और रोटियां थीं। अम्बपालिका सेवा में करबद्ध खड़ी रही। भगवान् ने मौन होकर भोजन किया और तृप्त होकर कहा—बस।

अम्बपालिका के नेत्रों से अश्रुधारा बही। प्रभु ज्यों ही शुद्ध होकर आसन पर विराजे, अम्बपालिका ने पृथ्वी में गिरकर प्रणाम किया।

भगवान् ने कहा—अम्बपालिका, अब और तेरी क्या इच्छा है ?

"प्रभु एक तुच्छ भिक्षा प्रदान हो ?"

तथागत ने गम्भीर होकर कहा—वह क्या है ?

"प्रभो ! आज्ञा कीजिए, कोई भिक्षु अपना उत्तरीय प्रदान करे।" आनन्द ने उत्तरीय उतारकर अम्बपालिका को दे दिया। क्षण-भर के लिए अम्बपालिका भीतर गई परन्तु दूसरे ही क्षण वह उसी वस्त्र से अंग लपेटे आ रही थी। उस बौद्ध भिक्षु के प्रदान किए एकमात्र वस्त्र को छोड़कर उसके पास न कोई और वस्त्र था, न आभरण। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। भगवान् विमूढ़ उसका व्यापार देख रहे थे। वह आकर भगवान् के सम्मुख फिर लोट गई।

भगवान् ने शुभ हस्त से उसे स्पर्श करके कहा—उठो, उठो ! हे कल्याणी ! तुम्हारी इच्छा क्या है ?

"महाप्रभु ! अपवित्र दासी की धृष्टता क्षमा हो। यह महानारी-शरीर कलङ्कित करके मैं जीवित रहने पर बाधित की गई, शुभ सङ्कल्प से मैं वंचित रही; प्रभो, यह समस्त सम्पदा कलुषित तपश्चर्या का संचय है। मैं कितनी व्याकुल, कितनी कुण्ठित, कितनी शून्यहृदया रहकर अब तक जीवित रही हूं, यह कैसे कहूं। मेरे जीवन में दो ज्वलन्त दिन आए। प्रथम दिन के फलस्वरूप मैं आज मगध के भावी सम्राट् की राजमाता हूं, परन्तु भगवन् ! आज के महान् पुण्ययोग के फलस्वरूप अब मैं इससे भी उच्च पद प्राप्त करने की धृष्ट अभिलाषा करती हूं। महाप्रभु प्रसन्न हों। जब भगवान् की चरण-रज से यह घर पवित्र हुआ, तब यहां विलास और पाप कैसा ? उसकी सामग्री ही क्यों, उसकी स्मृति ही क्यों ?

"इसलिए भगवान् के चरण-कमलों में यह सारी सम्पदा—महल, अटारी, धन, कोष, हाथी, प्यादे, रथ, वस्त्र, भण्डार आदि सब समर्पित है। प्रभु ने भिक्षु का उत्तरीय मुझे भिक्षा में दिया है, मेरे शरीर की लज्जा-निवारण को यह बहुत है स्वामिन् ! आज से अम्बपाली भिक्षुणी हुई। अब यह इस भिक्षा में प्राप्त पवित्र वस्त्र को प्राण देकर भी सम्मानित करेगी। हे प्रभु ! आज्ञा हो।"

इतना कहकर अविरल अश्रुधारा से भगवत्-चरणों को धोती हुई, अम्बपालिका बुद्ध की चरण-रज नेत्रों से लगाकर उठी, और धीरे-धीरे महल से बाहर चली। महावीतराग बुद्ध के नेत्र आप्यायित हुए। उन्होंने 'तथास्तु' कहा और खड़े होकर उसका सिर स्पर्श करके कहा—कल्याण ! कल्याण ! ! सहस्र-सहस्र कण्ठ से 'जय अम्बपालिके, जय अम्बपालिके' का गगनभेदी नाद उठा। सहस्रों नर-नारी पीछे चले। अम्बपालिका उस पीत

परिधान को धारण किए, नीचा सिर किए, पैदल उसी राजमार्ग से भूमि पर दृष्टि दिए धीरे-धीरे नगर से बाहर जा रही थी और उसके पीछे समस्त नगर उमड़ा जा रहा था। खिड़कियों से पौर वधुएं पुष्प और खील-वर्षा कर रही थीं।

भगवान् ने कहा—हे आनन्द, यह स्थान बौद्ध भिक्षुओं का प्रथम विहार होगा। बौद्ध भिक्षु यहां रहकर सन्मार्ग का अन्वेषण करेंगे—यही तथागत की इच्छा है।

आनन्द ने सिर झुकाया। भिक्षु-मण्डल जय-नाद कर उठा। बुद्ध भगवान् धीरे-धीरे उठकर नगर के राजमार्ग से आते हुए अम्बपालिका की वाड़ी में आकर अपने आसन पर विराजमान हुए। कुछ दूर एक वृक्ष की जड़ में अम्बपालिका स्थिर बैठी थी। भगवान् को स्थित देख वह उठी और धीर भाव से प्रभु के सम्मुख आकर खड़ी हुई। भगवान् ने उसकी ओर देखा। अम्बपालिका ने विनयावनत होकर कहा—

'बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छामि
संघं सरणं गच्छामि'

तथागत स्थिर हुए। उन्होंने तत्काल पवित्र जल उसके मस्तक पर सिंचन किया और पवित्र वाक्यों का उपदेश देकर कहा—भिक्षुओ ! महा-साध्वी अम्बपालिका का स्वागत करो।

फिर जयनाद से दिशाएं गूंज उठीं और अम्बपालिका तथागत तथा अन्य वृद्ध भिक्षुगण को प्रणाम कर वहां से चल दी और फिर वैशाली के पुरुष उसे न देख सके ! !

दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी

यह कहानी सम्भवतः आचार्य की सबसे अधिक प्राचीन कहानी है। और सन् 14 या 15 के लगभग लिखी गई थी। उन दिनों वे चिकित्सक की हैसियत से किसी रियासत में एक राजकुमारी की चिकित्सा करने गए थे। वहां जो उन्होंने राजकुमारी का रूप-वैभव और शरीर पर लाखों रुपये मूल्य के हीरे-मोती देखे और राजकुमारी की जो मनोवृत्ति का अध्ययन किया तो उसीसे प्रभावित होकर उन्होंने इस कहानी की सृष्टि की थी। तब एक बवंडर यह भी उठा था कि यह कहानी चोरी का माल है। किसीने उसे गुजराती से, किसीने मराठी से और किसीने उर्दू से चुराई हुई बताया था। तब आचार्य ने इन समालोचक-पुंगवों को एक संक्षिप्त उत्तर दिया था कि चोरी के जुर्म में वे सूली पर चढ़ने को तैयार हैं, बशर्ते कि ये समालोचकगण उनकी विधवा कलम का पाणिग्रहण करने को तैयार हों। अयोग्य समालोचक के मुंह पर यह एक करारा तमाचा था। तब से यह कहानी बहुत प्रसिद्ध हो गई। भारत के भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में उसे आज के तरुणों के पिताओं ने पढ़ा। और अब आज के तरुण पढ़ रहे हैं। कहानी में उत्कट मानसिक आघात-प्रतिघातों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तो है ही, मुगलों के राजसी वैभव के रेखाचित्र भी हैं। और इन चित्रों का इतना सच्चा उतरने का कारण यह था कि उन दिनों आचार्य का राजा महाराजाओं के अन्तःपुर में बहुत प्रवेश था। और चिकित्सक के नाते उन्हें गुप्त से गुप्त बातें भी ज्ञात होती रहती थीं। परन्तु कथा का मूलाधार एक मशहूर किस्सागो के दन्त किस्से पर आधारित था। उन दिनों दिल्ली में शाही ज़माने के कुछ किस्सागो ज़िन्दा थे, जो शाही परम्परा से रईसों को किस्से सुनाने का खानदानी पेशा करते आए थे। एक किस्सा सुनाने की उनकी फीस दो रुपये से लेकर पचास रुपये तक होती थी। आचार्य को इन किस्सों से बहुत लगाव था। और कहना चाहिए उनकी कहानी लिखने में प्रवृत्ति किसी साहित्यिक प्रेरणा से नहीं हुई, इन किस्सागो लोगों

की ही वाणी से हुई। इस प्रकार यह कहानी यदि चोरी का ही माल है तो किसी साहित्य की चोरी का नहीं, एक किस्सागो के मुंह से चुराया हुआ है। इस कहानी के इतिहास में एक बात यह कहनी और है कि इसकी फीस दो रुपये उन्हें देनी पड़ी थी। और जब यह कहानी प्रथम बार 'सुधा' में छपी तो उन्हें मुबलिग पांच रुपये पुरस्कार (?) मिले थे।

•

गर्मी के दिन थे। बादशाह ने उसी फागुन में सलीमा से नई शादी की थी। सल्तनत के झंझटों से दूर रहकर नई दुलहिन के साथ प्रेम और आनन्द की कलोल करने वे सलीमा को लेकर कश्मीर के दौलतखाने में चले आए थे।

रात दूध में नहा रही थी। दूर के पहाड़ों की चोटियां, बर्फ से सफेद होकर चांदनी में बहार दिखा रही थीं। आरामबाग के महलों के नीचे पहाड़ी नदी बल खाकर बह रही थी।

मोतीमहल के एक कमरे में शमादान जल रहा था, और उनकी खुली खिड़की के पास बैठी सलीमा रात का सौन्दर्य निहार रही थी। खुले हुए बाल उसकी फीरोज़ी रंग की ओढ़नी पर खेल रहे थे। चिकन के काम से सजी और मोतियों से गुथी हुई उस फीरोज़ी रंग की ओढ़नी पर कसी हुई कमखाब की कुरती और पन्नों को कमरपेटी पर अंगूर के बराबर बड़े मोतियों की माला झूम रही थी। सलीमा का रंग भी मोती के समान था। उसकी देह की गठन निराली थी। संगमरमर के समान पैरों में ज़री के काम के जूते पड़े थे, जिनपर दो हीरे धक्-धक् चमक रहे थे।

कमरे में एक कीमती ईरानी कालीन का फर्श बिछा हुआ था, जो पैर रखते ही हाथ-भर नीचे धंस जाता था। सुगन्धित मसालों से बने शमादान जल रहे थे। कमरे में चार पूरे कद के आईने लगे थे। संगमरमर के आधार पर, सोने-चांदी के फूलदानों में, ताजे फूलों के गुलदस्ते रखे थे। दीवारों और दरवाज़ों पर चतुराई से गुथी हुई नागकेसर और चम्पे की मालाएं झूल रही थीं। जिनकी सुगन्ध से कमरा महक रहा था। कमरे में अनगिनत बहुमूल्य कारीगरी की देश-विदेश की वस्तुएं करीने से सजी हुई थीं।

बादशाह दो दिन से शिकार को गए थे। इतनी रात होने पर भी नहीं आए थे। सलीमा खिड़की में बैठी प्रतीक्षा कर रही थी। सलीमा ने उकताकर दस्तक दी। एक बांदी दस्तबस्ता हाज़िर हुई।

बांदी सुन्दर और कमसिन थी। उसे पास बैठने का हुक्म देकर सलीमा

ने कहा—

"साकी, तुझे बीन अच्छी लगती है या बांसुरी ?"

बांदी ने नम्रता से कहा—हुज़ूर जिसमें खुश हों।

सलीमा ने कहा—पर तू किसमें खुश है ?

बांदी ने कम्पित स्वर में कहा—सरकार ! बांदियों की खुशी ही क्या !

सलीमा हंसते-हंसते लोट गई। बांदी ने वंशी लेकर कहा—क्या सुनाऊं ?

बेगम ने कहा—ठहरो, कमरा बहुत गरम मालूम देता है। इसके तमाम दरवाज़े और खिड़कियां खोल दे। चिरागों को बुझा दे, चटखती चांदनी की लुत्फ उठाने दे, और वे फूलमालाएं मेरे पास रख दे।

बांदी उठी। सलीमा बोली—सुन पहले एक गिलास शरबत दे, बहुत प्यासी हूं।

बांदी ने सोने के गिलास में खुशबूदार शरबत बेगम के सामने ला धरा। बेगम ने कहा—उफ् ! यह तो बहुत गर्म है। क्या इसमें गुलाब नहीं दिया ?

बांदी ने नम्रता से कहा—दिया तो है सरकार !

"अच्छा, इसमें थोड़ा-सा इस्तंबोल और मिला।"

साकी ग्लास लेकर दूसरे कमरे में चली गई। इस्तंबोल मिलाया और भी एक चीज़ मिलाई। फिर वह सुवासित मदिरा का पात्र बेगम के सामने ला धरा।

एक ही सांस में उसे पीकर बेगम ने कहा—अच्छा, अब सुना। तूने कहा था कि तू मुझे प्यार करती है; सुना, कोई प्यार का ही गाना सुना।

इतना कह और गिलास को गलीचे पर लुढ़काकर मदमाती सलीमा उस कोमल मखमली मसनद पर खुद भी लुढ़क गई, और रस-भरे नेत्रों से साकी की ओर देखने लगी। साकी ने बंशी का स्वर मिलाकर गाना शुरू किया—

'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी—'

बहुत देर तक साकी की वंशी और कण्ठ-ध्वनि कमरे में घूम-घूमकर रोती रही। धीरे-धीरे साकी खुद भी रोने लगी। साकी मदिरा और यौवन के नशे में चूर होकर झूमने लगी।

गीत खतम करके साकी ने देखा, सलीमा बेसुध पड़ी है। शराब की तेज़ी से उसके गाल एकदम सुर्ख हो गए हैं, और तांबूल-राग-रंजित होंठ रह-रहकर फड़क रहे हैं। सांस की सुगन्ध से कमरा महक रहा है। जैसे

मंद पवन से कोमल पत्ती कांपने लगती है, उसी प्रकार सलीमा का वक्षःस्थल धीरे-धीरे कांप रहा है। प्रस्वेद की बूंदें ललाट पर दीपक के उज्ज्वल प्रकाश में मोतियों की तरह चमक रही हैं।

वंशी रखकर साकी क्षण-भर बेगम के पास आकर खड़ी हुई। उसका शरीर कांपा, आंखें जलने लगीं, कण्ठ सूख गया। वह घुटने के बल बैठकर बहुत धीरे-धीरे अपने आंचल से बेगम के मुख का पसीना पोंछने लगी। इसके बाद उसने झुककर बेगम का मुंह चूम लिया।

फिर ज्यों ही उसने अचानक आंख उठाकर देखा, खुद दीन-दुनिया के मालिक शाहजहां खड़े उसकी यह करतूत अचरज और क्रोध से देख रहे हैं।

साकी को सांप डस गया। वह हतबुद्धि की तरह बादशाह का मुंह ताकने लगी। बादशाह ने कहा—तू कौन है ? और यह क्या कर रही थी ?

साकी चुप खड़ी रही। बादशाह ने कहा—जवाब दे !

साकी ने धीमे स्वर में कहा—जहांपनाह ! कनीज़ अगर कुछ जवाब न दे, तो ?

बादशाह सन्नाटे में आ गए—बांदी की इतनी हिम्मत ?

उन्होंने फिर कहा—मेरी बात का जवाब नहीं ? अच्छा, तुझे नंगी करके कोड़े लगाए जाएंगे !

साकी ने अकम्पित स्वर में कहा—मैं मर्द हूं !

बादशाह की आंखों में सरसों फूल उठी। उन्होंने अग्निमय नेत्रों से सलीमा की ओर देखा। वह बेसुध पड़ी सो रही थी। उसी तरह उसका भरा यौवन खुला पड़ा था। उनके मुंह से निकला—उफ् ! फाहशा ! और तत्काल उनका हाथ तलवार की मूठ पर गया। फिर उन्होंने कहा—दोज़ख के कुत्ते ! तेरी यह मज़ाल !

फिर कठोर स्वर में पुकारा—मादूम !

एक भयंकर रूप वाली तातरी औरत बादशाह के सामने अदब से आ खड़ी हुई बादशाह ने हुक्म दिया—इस मर्दूद को तहखाने में डाल दे, ताकि बिना खाए-पिए मर जाए।

मादूम ने अपने कर्कश हाथों में युवक का हाथ पकड़ा और ले चली। थोड़ी देर बाद दोनों एक लोहे के मज़बूत दरवाज़े के पास आ खड़े हुए। तातारी बांदी ने चाभी निकाल दरवाज़ा खोला, और कैदी को भीतर ढकेल दिया। कोठरी की गच कैदी का बोझ ऊपर पड़ते ही कांपती हुई नीचे धसकने लगी !

प्रभात हुआ। सलीमा की बेहोशी दूर हुई। चौंककर उठ बैठी। बाल

संवारे, ओढ़नी ठीक की, और चोली के बटन कसने को आईने के सामने जा खड़ी हुई। खिड़कियां बन्द थीं। सलीमा ने पुकारा—साकी ! प्यारी साकी ! बड़ी गर्मी है, ज़रा खिड़की तो खोल दे। निगोड़ी नींद ने तो आज गज़ब ढा दिया। शराब कुछ तेज़ थी।

किसीने सलीमा की बात न सुनी। सलीमा ने जरा ज़ोर से पुकारा—साकी !

जवाब न पाकर सलीमा हैरान हुई। वह खुद खिड़की खोलने लगी। मगर खिड़कियां बाहर से बन्द थीं। सलीमा ने विस्मय से मन ही मन कहा—क्या बात है ? लौंडियां सब क्या हुईं ?

वह द्वार की तरफ चली। देखा, एक तातारी बांदी नंगी तलवार लिए पहरे पर मुस्तैद खड़ी है। बेगम को देखते ही उसने सिर झुका लिया।

सलीमा ने क्रोध से कहा—तुम लोग यहां क्यों हो ?

"बादशाह के हुक्म से।"

"क्या बादशाह आ गए ?"

"जी हां।"

"मुझे इत्तिला क्यों नहीं की ?"

"हुक्म नहीं था।"

"बादशाह कहां हैं।"

"ज़ीनतमहल के दौलतखाने में।"

सलीमा के मन में अभिमान हुआ। उसने कहा—ठीक है, खूबसूरती की हाट में जिनका कारबार है, वे मुहब्बत को क्या समझेंगे ? अब तो ज़ीनतमहल की किस्मत खुली ?

तातारी स्त्री चुपचाप खड़ी रही। सलीमा फिर बोली—मेरी साकी कहां है ?

"कैद में।"

"क्यों ?"

"जहांपनाह का हुक्म ?"

"उसका क़ुसूर क्या था।"

"मैं अर्ज़ नहीं कर सकती।"

"कैदखाने की चाभी मुझे दे, मैं अभी उसे छुड़ाती हूं।"

"आपको अपने कमरे से बाहर जाने का हुक्म नहीं है।"

"तब क्या मैं भी कैद हूं ?"

"जी हां।"

सलीमा की आंखों में आंसू भर आए। वह लौटकर मसनद पर गड़

गई, और फूट-फूटकर रोने लगी। कुछ ठहरकर उसने एक खत लिखा—

"हुज़ूर ! कुसूर माफ फर्मावें। दिन भर थकी होने से ऐसी बेसुध सो गई कि हुज़ूर के इस्तकबाल में हाज़िर न रह सकी। और मेरी उस लौंडी की भी जांबख्शी जाए। उसने हुज़ूर के दौलतखाने में लौट आने की इत्तिला मुझे वाजिबी तौर पर न देकर बेशक भारी कुसूर किया है। मगर वह नई, कमसिन, गरीब दुखिया है।

—कनीज़

सलीमा"

चिट्ठी बादशाह के पास भेज दी गई। बादशाह ने आगे होकर कहा—क्या लाई है?

बांदी ने दस्तबस्ता अर्ज़ की—खुदावन्द ! सलीमा बीवी की अर्ज़ी है।

बादशाह ने गुस्से से होंठ चबाकर कहा—उससे कह दे कि मर जाए ! इसके बाद खत में एक ठोकर मारकर उन्होंने उधर से मुंह फेर लिया।

बांदी सलीमा के पास लौट आई। बादशाह का जवाब सुनकर सलीमा धरती में बैठ गई। उसने बांदी को बाहर जाने का हुक्म दिया, और दरवाज़ा बन्द करके फूट-फूटकर रोई। घंटों बीत गए; दिन छिपने लगा। सलीमा ने कहा—हाय ! बादशाहों की बेगम होना भी क्या बदनसीबी है ! इन्तज़ारी करते-करते आंखें फूट जाएं, मिन्नतें करते-करते जबान घिस जाए, अदब करते-करते जिस्म टुकड़े-टुकड़े हो जाए, फिर भी इतनी-सी बात पर कि मैं ज़रा सो गई, उनके आने पर जग न सकी, इतनी सज़ा ! इतनी बेइज़्ज़ती ! तब मैं बेगम क्या हुई? ज़ीनत और बांदियां सुनेंगी तो क्या कहेंगी? इस बेइज़्ज़ती के बाद मुंह दिखाने-लायक कहां रही? अब तो मरना ही ठीक है। अफसोस ! मैं किसी गरीब किसान की औरत क्यों न हुई !

धीरे-धीरे स्त्रीत्व का तेज उसकी आत्मा में उदय हुआ। गर्व और दृढ़ प्रतिज्ञा के चिह्न उसके नेत्रों में छा गए। वह सांपिन की तरह चपेट खाकर उठ खड़ी हुई। उसने एक और खत लिखा—

"दुनिया के मालिक ! आपकी बीवी और कनीज़ होने की वजह से मैं आपके हुक्म को मानकर मरती हूं। इतनी बेइज़्ज़ती पाकर एक मलिका का मरना ही मुनासिब भी है। मगर इतने बड़े बादशाह को औरतों को इस कदर नाचीज़ तो न समझना चाहिए कि एक अदना-सी बेवकूफी की इतनी कड़ी सज़ा दी जाए। मेरा कुसूर सिर्फ इतना ही था कि मैं बेखबर सो गई थी। खैर, सिर्फ एक बार हुज़ूर को देखने की ख्वाहिश लेकर मरती हूं। मैं उस परवरदिगार के पास जाकर अर्ज़ करूंगी कि वह मेरे शौहर को सलामत रक्खे।

—सलीमा"

खत को इत्र से सुवासित करके ताज़े फूलों के एक गुलदस्ते में इस तरह रख दिया कि जिससे किसीकी उसपर फौरन हो नज़र पड़ जाए। इसके बाद उसने जवाहरात की अंगूठी निकाली, और कुछ देर तक आंखें गड़ा-गड़ाकर उसे देखती रही। फिर उसे चाट गई!

बादशाह शाम की हवाखोरी को नज़र-बाग में टहल रहे थे। दो-तीन खोजे घबराए हुए आए, और चिट्ठी पेश करके अर्ज की—हुज़ूर गज़ब हो गया! सलीमा बीवी ने ज़हर खा लिया है, और वे मर रही हैं!

क्षण भर में बादशाह ने खत पढ़ लिया। झपटे हुए सलीमा के महल पहुंचे। प्यारी दुलहिन ज़मीन पर पड़ी है। आंखें ललाट पर चढ़ गई हैं। रंग कोयले के समान हो गया है। बादशाह से न रहा गया। उन्होंने घबराकर कहा—हकीम, हकीम को बुलाओ! कई आदमी दौड़े।

बादशाह का शब्द सुनकर सलीमा ने उनकी तरफ देखा, और धीमे स्वर में कहा—ज़हे किस्मत!

बादशाह ने नज़दीक बैठकर कहा—सलीमा! बादशाह की बेगम होकर क्या तुम्हें यही लाज़िम था?

सलीमा ने कष्ट से कहा—हुज़ूर! मेरा कुसूर बहुत मामूली था।

बादशाह ने कड़े स्वर में कहा—बदनसीब! शाही जनानखाने में मर्द को भेष बदलकर रखना मामूली कुसूर समझती है? कानों पर यकीन कभी न करता, मगर आंखों-देखी को भी झूठ मान लूं?

तड़पकर सलीमा ने कहा—क्या?

बादशाह डरकर पीछे हट गए। उन्होंने कहा—सच कहो, इस वक्त तुम खुदा की राह पर हो, यह जवान कौन था।"

सलीमा ने अचकचाकर पूछा—कौन जवान?

बादशाह ने गुस्से से कहा—जिसे तुमने साकी बनाकर पास रक्खा था।

सलीमा ने घबराकर कहा—हैं क्या वह मर्द है!

बादशाह तो क्या तुम सचमुच यह बात नहीं जानतीं?

सलीमा के मुंह से निकला—या खुदा!

फिर उसके नेत्रों से आंसू बहने लगे। वह सब मामला समझ गई। कुछ देर बाद बोली—खाविंद! तब तो कुछ शिकायत ही नहीं; इस कुसूर की तो यही सज़ा मुनासिब थी। मेरी बदगुमानी माफ फर्माई जाए। मैं अल्लाह के नाम पर पड़ी कहती हूं, मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं है।

बादशाह का गला भर आया। उन्होंने कहा—तो प्यारी सलीमा!

तुम बेकुसूर ही चलीं ? बादशाह रोने लगे।

सलीमा ने उनका हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रखकर कहा—मालिक मेरे ! जिसकी उम्मीद न थी, मरते वक्त वह मजा मिल गया। कहा सुना माफ हो, और एक अर्ज़ लौंडी की मंज़ूर हो।

बादशाह ने कहा—जल्दी कहो सलीमा !

सलीमा ने साहस से कहा—उस जवान को माफ कर देना ,

इसके बाद सलीमा की आंखों में आंसू बह चले, और थोड़ी ही देर में वह ठण्डी हो गई !

बादशाह ने घुटनों के बल बैठकर उसका ललाट चूमा, और फिर बालक की तरह रोने लगे।

गज़ब के अंधेरे और सर्दी में युवक भूखा-प्यासा पड़ा था। एकाएक घोर चीत्कार करके किवाड़ खुले। प्रकाश के साथ ही एक गम्भीर शब्द तहखाने में भर गया—बदनसीब नौजवान ! क्या होश-हवास में है ?

युवक ने तीव्र स्वर में पूछा—कौन ?

जवाब मिला—बादशाह।

युवक ने कुछ भी अदब किए बिना कहा—यह जगह बादशाहों के लायक नहीं है। क्यों तशरीफ लाए हैं ?

"तुम्हारी कैफियत नहीं सुनी थी, उसे सुनने आया हूं।"

कुछ देर चुप रहकर युवक ने कहा—सिर्फ सलीमा को झूठी बदनामी से बचाने के लिए कैफियत देता हूं, सुनिए : सलीमा जब बच्ची थी, मैं उसके बाप का नौकर था। तभी से मैं उसे प्यार करता था। सलीमा भी प्यार करती थी; पर वह बचपन का प्यार था। उम्र होने पर सलीमा पर्दे में में रहने लगी, और फिर वह शाहजहां की बेगम थी। मगर मैं उसे भूल न सका। पांच साल तक पागल की तरह भटकता रहा, अन्त में भेष बदलकर बांदी की नौकरी कर ली। सिर्फ उसे देखते रहने और खिदमत करके दिन गुज़ारने का इरादा था। उस दिन उज्ज्वल चांदनी, सुगन्धित पुष्प-राशि, शराब की उत्तेजना और एकान्त ने मुझे बेबस कर दिया। उसके बाद मैंने आंचल से उसके मुख का पसीना पोंछा, और मुंह चूम लिया। मैं इतना ही खतावार हूं। सलीमा इसकी बाबत कुछ नहीं जानती।

बादशाह कुछ देर चुपचाप खड़े रहे। इसके बाद वे बिना ही दरवाज़ा बन्द किए धीरे-धीरे चले गए।

सलीमा की मृत्यु को दस दिन बीत गए। बादशाह सलीमा के कमरे में

ही दिन-रात रहते हैं। सामने, नदी के उसपार पेड़ों के झुरमुट में सलीमा की सफेद कब्र बनी है। जिस खिड़की के पास सलीमा बैठी उस दिन रात को बादशाह की प्रतीक्षा कर रही थी, उसी खिड़की में, उसी चौकी पर बैठे हुए बादशाह उसी तरह सलीमा की कब्र दिन-रात देखा करते हैं। किसीको पास आने का हुक्म नहीं। जब आधी रात हो जाती है तो उस गम्भीर रात्रि के सन्नाटे में एक मर्मभेदिनी गीत ध्वनि उठ खड़ी होती है। बादशाह साफ-साफ सुनते हैं, कोई करुण-कोमल स्वर में गा रहा है—

"दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी ?"

बावर्चिन

एक बार मुगल-साम्राज्य का प्रताप-सूर्य मध्याकाश में तपकर अपने काल में विश्व भर में अप्रतिम तेज विस्तार कर गया था। मुगल-दरबार का रुआब, दब-दबा और शान-शौकत कभी अवर्ण्य थी, परन्तु जब उसके अस्त होने का समय आया तो उसकी दशा ऐसी दयनीय हो गई जिसकी करुण कहानी आंसुओं के समुद्र में डूब गई। इस कहानी के अन्तिम मुगल-सम्राट् बहादुरशाह के पतन-काल और मुगल-बेगमात के आंसुओं का, जो कभी केवल हीरे, मोती, इत्र और ऐश्वर्य को ही जानती थीं, ऐसा चोट भरा रेखा-चित्र है जो हृदय में घाव कर सकता है। साम्राज्यों के पतन में विश्वासघातियों का सदैव साथ रहा है। इसमें भी एक ऐसे विश्वासघाती का संकेत किया गया है जिसके बड़े वर्णन मुगल-तख्त के पतन-काल के इतिहास में पाए गए हैं।

●

सन् 1845 की 28वीं मई के तीसरे पहर एक पालकी चांदनी चौक में होकर लालकिले की ओर जा रही थी। पालकी बहुमूल्य कमख्वाब और ज़री के पर्दों से ढकी हुई थी। आठ कहार उसे कन्धों पर उठाए थे और 16 तातारी बांदियां नंगी तलवार लिए उसके गिर्द चल रही थीं। उसके पीछे 40 सवारों का एक दस्ता था, जिसका अफसर एक कुम्मेत अरबी घोड़े पर चढ़ा हुआ था। उसकी ज़रबफ्त की बहुमूल्य पोशाक पर कमर में नाज़ुक तलवार लटक रही थी। उसकी मूंछ पर गङ्गाजमुनी काम हो रहा था। उसकी काली घनी दाढ़ी के बीच अंगारे की तरह दहकते चेहरे में मशाल की तरह जलती हुई आंखें चमक रही थीं, जिन्हें वह चारों तरफ घुमाता हुआ, अकड़कर, किन्तु खूब सावधानी से पालकी के पीछे जा रहा था।

भयानक गर्मी से दिल्ली तप रही थी। तब चांदनी चौक की सड़कें आज जैसी तारकोल बिछी हुई अईने की तरह चमचमाती न थीं, न मोटरों की घोघों-पोंपों और सर्राटेबन्द दौड़ थी। चांदनी चौक की सड़कों पर काफी गर्द-गुब्बार रहता था। हाथी, घोड़े, पालकी और नागौरी बैलों की जोड़ी से ठुमकती हुई बहलियां एक अजब बांकी अदा से उछला करती थीं।

अब जिस स्थान पर घण्टाघर है, वहां तब एक बड़ा-सा हौज़ था, जो चांदनी चौक की नहर में मिल गया था, और जहां कम्पनी बाग और कमेटी की लाल संगीन इमारत खड़ी है, वहां एक बड़ी भारी किन्तु खस्ता हाल सराय थी, जिसकी बुर्जियां टूट गई थीं और जहां अनगिनत खच्चर टट्टू, बैलगाड़ियां, घोड़े और परदेसी बेतरतीबी से पेड़ों के नीचे या बे-मरम्मती कोठरियों में भरे हुए थे।

जिस समय पालकी वहां से गुज़र रही थी, उस समय हौज़ पर खासा धोबी-घाट लगा हुआ था। कोई नहा रहा था, कोई साबुन से कपड़े धो रहा था। सराय के टूटे किन्तु संगीन फाटक पर देशी-विदेशी आदमियों का जमघट लगा था।

पालकी अवश्य ही कहीं दूर से आ रही थी। कहार लोग पसीने से लथपथ हो रहे थे। उनका दम फूल रहा था और वे लड़खड़ा रहे थे। पीछे से अफसर तेज़ चलने की ताकीद कर रहा था, मगर ऐसा मालूम होता था कि अब और तेज़ चलना असम्भव है।

कहारों में एक बूढ़ा कहार था। उसका हाल बहुत ही बुरा हो रहा था। कुछ कदम और चलकर वह ठोकर खाकर गिर पड़ा, पालकी रुक गई।

तातारी बांदियां झिझक कर खड़ी हो गईं। अफसर ने घोड़ा बढ़ाया। बूढ़ा अभी संभला न था। एक चाबुक तपाक से उसकी गर्दन और कनपटी की चमड़ी उधेड़ गया। साथ ही बिजली की कड़क की तरह उसके कान में शब्द पड़े—उठ, उठ, ओ दोज़ख के कुत्ते! देर हो रही है।

कहार ने उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका। वह गिर गया। गिरते ही दस-बीस, पच्चीस-पचास चाबुक तड़ातड़ पड़े। खून का फव्वारा छूटा और कहार का जीवन-प्रदीप बुझ गया!!

लाश को पैर की ठोकर से ढकेलकर अफसर ने खूनी आंख भीड़ पर दौड़ाई। एक गठीला गौरवर्ण युवक मैले और फटे वस्त्र पहने भीड़ में सबसे आगे खड़ा था। मुश्किल से रेखें भीगी होंगी। अफसर ने पालकी उठाने का हुक्म दिया। युवक आगे बढ़ा। दूसरे ही क्षण तपाक से एक चाबुक उसकी पीठ पर पड़ा और साथ ही ये शब्द—साला, जल्दी!

युवक ने क्रुद्ध स्वर में कहा—जनाब! हुक्म बजा लाता हूं, मगर ज़बान संभाल···

दस-बीस चाबुक खाकर युवक वहीं तड़पकर गिर गया। उसके नाक और मुंह से खून का फव्वारा बह चला। अफसर ने एक आदमी को कन्धा लगाने का हुक्म दिया। क्षण-भर में पालकी फिर आगे रवाना हुई।

चिराग जल चुके थे। दीवाने खास में हज़ारा फानूस की तमाम काफूरी मोमबत्तियां जल रही थीं। जमुना की लहरों से धुलकर पूर्वी हवा झरोखों से छन-छनकर आ रही थी। खास-खास दरबारी बादशाह सलामत के तशरीफ लाने की इन्तज़ारी में अदब से खड़े थे। सामने एक चौकी पर वही युवक लहू-लुहान पड़ा था। अन्तःपुर के झरोखों से परिचारिकाओं के कण्ठ स्वर ने कहा—होशियार, अदब कायदा निगहदार! यह शब्दस्वर चौबदारों ने दोहराया—होशियार, अदब कायदा निगहदार! उमराव-मण्डल और मन्त्रि-मण्डल ज़मीन तक सिर झुकाकर खड़ा हो गया। सम्पूर्ण दरबार में निस्तब्धता छा गई। धीरे-धीरे वृद्ध सम्राट् बहादुरशाह दो सुन्दरियों के कन्धों का सहारा लिए भीतरी ड्योढ़ी से निकलकर सिंहासन पर आ बैठे। चार बांदियां मोरछल लेकर बगल में खड़ी हुईं। चोबदार ने पुकारा—ज़िल्ले इलाही बरामद कर्द मुजरा अदब से?"

यह सुनते ही एक उमराव सहमा हुआ अपने स्थान से आगे बढ़ा और सम्राट् के सामने जाकर उसने तीन बार झुककर सलाम किया। चोबदार ने उसके रुतबे और शान के अनुसार कुछ शब्द कहकर सम्राट् का ध्यान उधर आकर्षित किया। इसी प्रकार सभी सरदारों ने प्रणाम किया।

इसके बाद बादशाह ने वज़ीर को संकेत किया। वज़ीर ने ज़बान से कहा—जवान! तुम्हारे हालात बादशाह सलामत अगर्चे सुन चुके हैं, मगर तुम्हारी खास जबान से सुनना चाहते हैं। तमाम हालात मुफस्सिल में बयान करो।

युवक ने ज़मीन में लोट-लोटकर सब मामला बयान किया। बादशाह ने फरमाया—सब हरूफ-बहरूफ सही है। कहां है वह ज़ालिम ज़मीर?

ज़मीर तख्त के सामने आकर घुटनों के बल गिर गया।

बादशाह ने फरमाया—जमीर! तुझे कुछ कहना है?

"खुदाबन्द! रहम! रहम!"

बादशाह ने हुक्म दिया—इस ज़ालिम को सीधा खड़ा करो। मगर ठहरो, मैं इसपर भी रहम किया चाहता हूं। इसे नौकरी से बरखास्त किया जाता है और इसका दर्जा इस नौजवान को अता किया जाता है। इसकी तमाम जायदाद जब्त की जाती है और वह उस कहार के घर वालों को बख्श दी जाती है।

हुक्म देकर बादशाह उठे। तुरन्त चार बांदियों ने सहारा दिया। दरबारी लोग जमीन तक झुक गए।

बादशाह ने युवक के निकट आकर कहा—आराम होने तक शाही महलों में रहने की तुम्हें इजाज़त बख्शी जाती है और शाही हकीम तुम्हारे

मालजे को मुकर्रर किए जाते हैं।

युवक ने बादशाह की कदमबोसी की और पल्ला चूमा। बादशाह धीरे-धीरे अन्तःपुर में प्रवेश कर गए।

अन्तःपुर के उन झरोखों के भीतर, जहां किसी भी मर्द की परछाईं पहुंचनी सम्भव न थी, एक बहुमूल्य मखमली गद्दे पर वह घायल युवक पड़ा अपने प्रारब्ध-विकास की बात सोच रहा था। एक ही दुःखदायी घटना ने, जिसे शायद ही कोई निमन्त्रित करे, उसके भाग्य का पासा पलट दिया था। वह सोच रहा था, क्या सचमुच मेरे ये फटे चिथड़े, वह टूटा छप्पर का घर, वह माता का चक्की पीसना, सभी बदल जाएगा। वह जागते ही जागते स्वप्न देखने लगा—एक धवल अट्टालिका, दास-दासी, घोड़े-हाथी, सेना और न जाने क्या?

सभी विचारधाराओं के ऊपर उसे एक नवीन विचारधारा मूर्च्छित कर रही थी—वह कौन है? वही क्या इस सब भाग्य-परिवर्तन की कुंजी नहीं? पालकी के उस दुर्भेद्य पर्दे के भीतर……! वह सोच में मूर्च्छित हो गया।

हठात् उसकी विचारधारा को धक्का देते हुए कक्ष का पर्दा हटाकर दो दासियों के साथ एक खोजे ने प्रवेश किया। दासियों के हाथ में भोजन की सामग्री थी। स्वप्न-सुख की तरह कहीं वह राजभोग लुप्त न हो जाए, घायल युवक इस भय से लपककर उठा।

खोजे ने कहा—खाना खा लो, और खुदा का शुक्र करो। हुज़ूर शाहज़ादी तुमपर बहुत खुश हैं और वे जल्द तुम्हें देखने को तशरीफ लाने वाली हैं।

ाचन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना की तरह शाहज़ादी ने कक्ष में प्रवेश किय । दो अल्पवयस्का दासियां परछाईं की तरह उनके पीछे थीं। शुभ्र, महीन रेशमी परिधान पर ज़रदोजी और सलमे का बारीक काम निहायत फसाहत से हो रहा था। वह अस्फुटित कुन्दकली के समान, कोमलता और माधुर्य की मूर्तिमती रेखा के समान समस्त भारत के सम्राट् की पौत्री शाहज़ादी गुलबानू थी।

केवल क्षण-भर ही वह युवक उस अतिदुर्लभ मुख की ओर देखने का साहस कर सका। उसने उठने की चेष्टा की परन्तु मानो उसके शरीर का सत निकल गया था। वह गिर पड़ा, गिरे ही गिरे उसने ज़रा बढ़कर अपना मस्तक शाहज़ादी के कदमों में रख दिया। शाहज़ादी के जूतों में लगे हीरे युवक के मस्तक पर मुकुट की तरह दिप उठे।

शाहज़ादी ने मानो फूल बखेर दिए। उसने कहा—कल के हादसे का मुझे बहुत रंज है, पर मैं समझती हूं, अब तुम बहुत अच्छे हो। मैंने पालकी से तमाम माजरा देखा था, मगर कर क्या सकती थी? दादाजान से आते ही शिकायत कर दी थी।

युवक ने ज़रा ऊंचा उठकर शाहज़ादी का आंचल आंखों से लगाया, और बारम्बार जमीन चूमकर कहा—हुज़ूर खुदावन्द शाहज़ादी, कल अगर हुज़ूर की पालकी की खाक न नसीब होती तो आज यह दिन कहां? जहांपनाह ने इस नाचीज़ गुलाम को निहाल कर दिया। तावेदार ताउम्र इन कदमों का नमकहलाल रहेगा।

शाहज़ादी कुछ न कहकर धीरे-धीरे चली गई, परन्तु उसके सांस की सुगन्ध वहां भर गई थी, और उसीके प्रभाव से युवक के घाव भर गए थे। वह उस स्थान को, जहां शाहज़ादी के कमल-पद छू गए थे, अपनी छाती से लगाकर बदहवास पड़ा रहा। उस मूर्ति को चाहे क्षण-भर ही वह देख सका था, पर वह उसके रोम-रोम में रम गई थी। पर दुनिया के पर्दे में कौन-सा ऐसा कोई मर्द-बच्चा था जो फिर उसे एक बार देख लेने का हौसला भी कर सकता?

•

12 साल बीत गए। सन् 57 की 24 वीं मई थी। गदर की आग धू-धू करके जल रही थी। चिनगारियां आसमान को छू चुकी थीं। निकल्सन ने दिल्ली पर घेरा डाल रखा था। भाग्य की रेखा के बल पर बूढ़े और लाचार बादशाह बहादुरशाह ने बागियों का साथ दिया था। क्षण-क्षण में बागी हार रहे थे। अंग्रेज़ी तोपें कशमीरी दरवाज़े पर गरज रही थीं। लाहौरी दरवाज़ा सर हो चुका था। फतहपुरी मस्जिद के सामने अंग्रेज़ी घुड़सवार और बागियों की लाल होली खेली जा रही थी। लाशों के ढेर में से अधमरे सिपाही चिल्ला रहे थे। अंग्रेज़ बराबर बढ़ते और जो मिलता उसे संगीनों से छेदते चले आ रहे थे। कर्नल वाट्सन के हाथ में कमान थी। इनके साथ थे एक सम्भ्रान्त मुसलमान अमीर जनाब इलाहीबख्श। वे एक अरबी नफीस घोड़े पर पान चबाते, इतराते बढ़ रहे थे, लोग देख-देखकर भयभीत होकर घरों में छिप रहे थे।

ये इलाहीबख्श वही घायल युवक थे, जो अपनी जवांमर्दी और चतुराई से 10 वर्ष में बादशाह के अमीर और नगर के प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली व्यक्ति बन गए थे। अंग्रेज़ों ने दमदार मुगलों को जहां तोपों और संगीनों की नोक से वश में किया था, वहां कुछ नमकहराम संगदिल लोगों को अपनी भेद-नीति और सोने के टुकड़ों से वश में कर लिया था। इलाहीबख्श

भी उनमें से एक थे। 10 वर्ष पहले शाहज़ादी के कदमों में गिरकर नमक-हलाली की जो बात उन्होंने कही थी, वह अब उन्होंने दरगुज़र कर दी थी। वे अब अंग्रेज़ों के भेदिए थे।

दोनों व्यक्ति सराय के सामने जाकर ठहर गए। हौज़ के पास, जहां अब घण्टाघर है, बराबर-बराबर फांसियां गड़ी थीं और क्षण-क्षण में चारों तरफ गली-कूचों से आदमी पकड़े जाकर फांसी पर चढ़ाए जा रहे थे। कुछ खास कैदी इनकी प्रतीक्षा में बंधे बैठे थे। हडसन साहब ने सबको खड़े होने का हुक्म दिया। इलाहीबख्श ने उनमें से मुगल-सरदारों और राजपरिवार वालों की शनाख्त की; वे सब फांसी पर लटका दिए गए। इसके बाद बादशाह किले से भाग गए हैं—यह सुनकर एक फौज की टुकड़ी लेकर दोनों तीर की तरह रवाना हुए।

बादशाह सलामत जल्दी-जल्दी नमाज़ पढ़ रहे थे। उनके हाथ कांप रहे थे और आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी। शाहज़ादी गुलबानू ने आकर कहा—बाबाजान ! यह आप क्या कर रहे हैं ?

"बेटी अब और कर ही क्या सकता हूं ? खुदा से दुआ मांगता हूं, कहता हूं—ऐ दुनिया के मालिक ! मेरी मुश्किल आसान कर; यह तख्त, तैमूर के खून का तख्त तो आज गया ही, मेरे बच्चों की जान और आबरू पर रहम बख्श !"

गुलबानू ने कहा - बाबा ! दुश्मन किले तक पहुंच चुके हैं। आपके लिए सवारी तैयार है, भागिए !

बादशाह ने अंधे की तरह शाहज़ादी का हाथ पकड़कर कहा—भागूं कहां ? हाय ! वह घड़ी अब आ ही गई !

इसके बाद उन्होंने अपनी जड़ाऊ सन्दूकची मंगाई, और परिवार के सब लोगों को बुलाकर एक-एक मुट्ठी हीरे सबको देकर कहा—खुदा-हाफिज़ !

किले से निकलकर बादशाह सीधे निजामुद्दीन गए। उस वक्त उनके मुखमण्डल की आभा उतरी हुई थी। कुछ खास-खास ख्वाजासरा, कहार और इने-गिने शुभचिन्तकों के सिवा कोई साथ न था। चिन्ता और भय से वे रह-रहकर कांप रहे थे। उनकी सफेद दाढ़ी धूल से भर रही थी। बादशाह चुपचाप जाकर सीढ़ियों पर बैठ गए।

गुलाम हुसैन चिश्ती सुनकर दौड़े आए। बादशाह उन्हें देखते ही खिलखिलाकर हंस पड़े। चिश्ती साहब ने पूछा—खैर तो है ?

"खैर ही है, मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि ये बदनसीब गदर

षाले मनमानी करने वाले हैं। इनपर यकीन करना बेवकूफी है; ये खुद डूबेंगे और हमें भी डुबाएंगे। वही हुआ, भाग निकले। मुझे तो होनहार दिखाई दे गई थी कि मैं मुगलों का आखिरी चिराग हूं। मुगलों के तख्त का आखिरी सांस टूट रहा है, कोई घड़ी-भर का मेहमान है। फिर खून-खराबी क्यों करूं? इसीलिए किला छोड़कर चला आया। मुल्क खुदा का है, जिसे चाहे दे, जिससे चाहे ले। सैकड़ों साल तक हमारे नाम का सिक्का चला। अब हवा का रुख कुछ और ही है। वे हुकूमत करेंगे, ताज पहनेंगे। इसमें अफसोस क्यों? हमने भी तो दूसरों को मिटाकर अपना घर बसाया था! हां, आज तीन दिन से खाना नसीब नहीं हुआ है। कुछ हो तो ले आओ?"

चिश्ती साहब ने कहा—सिर्फ बाजरे की रोटी और सिर्के की चटनी है। हुक्म हो तो हाज़िर करूं।

"वही ले आओ।"

बादशाह ने शान्तिपूर्वक एक रोटी खाकर और पानी पीकर कहा—बस, अब हुमायूं के मकबरे में चला जाऊंगा, वहां जो भाग्य में होगा, वह होगा।

हुमायूं के मकबरे में हडसन और इलाहीबख्श ने आकर बादशाह को गिरफ्तार करके रंगून भेज दिया।

तीन वर्ष व्यतीत हो गए। दिल्ली में अंग्रेज़ी अमल जमकर बैठ गया था। लालकिले पर यूनियन जैक फहरा रहा था। फांसियों की विभीषिकाओं ने नगर और ग्राम की जनता के मन में दहल उत्पन्न कर दी थी। भेड़ की तरह दब्बू चुपचाप अंग्रेज़ों के विधान को अटल प्रारब्ध की तरह देख और सह रहे थे। इलाहीबख्श के पास बादशाही बख्शीश ही बहुत थी, अब अंग्रेज़ी जागीरों और मेहरबानियों ने उन्हें आधी दिल्ली का मालिक बना दिया था। सरकारी नीलामी में मुहल्ले के मुहल्ले उन्होंने कौड़ियों में पाए थे। उनकी बड़ी भारी अट्टालिका खड़ी मनुष्य के भाग्य पर हंस रही थी। सन्ध्या का समय था। अपनी हवेली के विशाल प्रांगण में तख्त के ऊपर बढ़िया ईरानी कालीन पर मसनद के सहारे इलाहीबख्श बैठे अम्बरी तमाखू पी रहे थे, दो-चार मुसाहिब सामने अदब से बैठे जी-हुज़ूरी कर रहे थे। मियांजी को, मालूम होता है, बचपन के दिन भूल गए थे। वे बहुत बढ़िया अतलस के अंगरखे पर कमखाब की नीमास्तीन पहने थे।

धीरे-धीरे अन्धकार के पर्दे को चीरती हुई एक मूर्ति अग्रसर हुई। लोगों ने देखा, एक स्त्री-मूर्ति मैला और फटा हुआ बुर्का पहने आ रही है।

लोगों ने रोका मगर उसने सुना नहीं। वह चुपचाप मियां इलाहीबख्श के सम्मुख आ खड़ा हुई।

मियां ने पूछा—क्या चाहती हो ?

"पनाह !"

"कौन हो ?"

"आफत की मारी !"

"अकेली हो ?"

"बिलकुल अकेली !"

"कुछ काम करना जानती हो ?"

"बावर्ची का काम सीख लिया है !"

"तनखाह क्या लोगी ?"

"एक टुकड़ा रोटी !"

बहुत महीन, दर्द भरी, कम्पित आवाज़ में इन जवाबों को सुनकर मियां इलाहीबख्श सोच में पड़ गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने नौकर को बुलाकर उस स्त्री को भीतर भिजवा दिया। उस दिन उसीको खाना बनाने का हुक्म हुआ।

मियां इलाहीबख्श दस्तरखान पर बैठे। दोस्त-अहबाब का पूरा जमघट था। तब तक दिल्ली में बिजली तारों से नहीं बांधी गई थी। सुगन्धित मोमबत्तियां शमादानों में जल रही थीं।

खाना खाने से सभी खुश हुए। नई बावर्चिन की तारीफ के पुल बांधने लगे। दोस्तों ने कहा—ज़रा उसे बुलाइए और इनाम दीजिए।

इलाहीबख्श ने बावर्चिन को बुला भेजा। उसने कहा—आका से दस्त-बस्ता अर्ज़ है कि मैं गैर मर्दों के सामने बेपर्दा नहीं हो सकती। हां, आका से पर्दा फज़ूल है। दोस्त लोग मन मारकर रह गए। मगर इलाहीबख्श के मन में प्रतिक्षण बावर्चिन को देखने की बेचैनी बढ़ चली। एकान्त होने पर उन्होंने उसे बुला भेजा। बावर्चिन ने जवाब दिया—मेरे मेहरबान मालिक ! सफर, मेहनत और भूख से बेदम तथा कपड़ों से गलीज हूं—खिदमत में हाजिर होने के काबिल नहीं।

इलाहीबख्श स्वयं भीतर गए और बावर्चिन के सामने जा खड़े हुए। बोले—क्या मैं तुम्हारी मुसीबत की दास्तान सुन सकता हूं ? यह तो मैं समझ गया कि तुम शरीफ खानदान की दुखियारी हो।

बावर्चिन ने अच्छी तरह अपना बुर्का ओढ़कर कहा—मालिक ! मेरी कोई दास्तान ही नहीं !

"क्या मुझसे पर्दा रक्खोगी ?"

"यह मुमकिन नहीं है !"

"तब ?"

"क्या आप मुझे देखना चाहते हैं ?"

"ज़रूर, ज़रूर !"

वह मैला और फटा बुर्का चम्पे की-सी उंगलियों ने हटाकर नीचे गिरा दिया। एक पीली किन्तु अभूतपूर्व मूर्ति; जिसके नेत्रों में पानी और होंठों में रस था, सामने दीख पड़ी।

इलाहीबख्श ने आंखों की धुन्ध आंखों से पोंछकर ज़रा आगे बढ़कर कहा—तुम्हें, आपको मैंने कहीं देखा है।

"जी हां, मेरे आका ! मेरे दादाजान की मेहरबानी से, लाल किले के भीतर जब आप मेरी डोली में लगाए जाने के लिए चाबुकों से लहू-लुहान किए गए थे, तब यह बदनसीब गुलबानू आपको तसल्ली देने तथा और भी कुछ देने आपकी खिदमत में आई थी। उम्मीद थी, मर्द औरत की अमानत —खासकर वह अमानत जो दुनिया की चीज़ नहीं, जिसके दाम जान और कुर्बानी हैं—संभालकर रक्खेंगे। पर पीछे यह जानने का कोई ज़रिया न रहा कि हुज़ूर ने वह अमानत किस हिफाज़त से कहां छिपाकर रक्खी ? गदर में वह रही या मेरे बाबाजान के तख्त के साथ वह भी गई ?

इलाहीबख्श का मुंह काला पड़ गया। बदहवासी की हालत में उनके मुंह से निकल पड़ा—आप शाहज़ादी गुलबानू···?

गुलबानू ने शान्त स्वर में कहा—वही हूं जनाब ! मगर डरिएगा नहीं ! अगर गदर में मेरी अमानत लुट भी गई होगी तो वह मांगने जनाब की खिदमत में नहीं आई हूं। अब गुलबानू शाहज़ादी नहीं, हुज़ूर की कनीज़ है—महज़ बार्वाचिन है ! मेरे आका, क्या बांदी के हाथ का खाना पसन्द आया ? क्या बदनसीब गुलबानू की नौकरी बहाल रह सकेगी ?

इलाहीबख्श बेहोश होने लगे। वे सिर पकड़कर वहीं बैठ गए। गुलबानू ने पंखा लेकर झलते हुए कहा—जनाब के दुश्मनों की तबियत नासाज़ तो नहीं, क्या किसीको बुलाऊं ?

इलाहीबख्श ज़मीन पर गिरकर शाहज़ादी का पल्ला चूमकर बोले—शाहज़ादी माफ करना ! मैं नमकहराम हूं।

"मैं जानती हूं। मगर हुज़ूर यह तो बहुत छोटा कसूर है। क्या हुज़ूर यह नहीं जानते कि औरतें दिल और मुहब्बत को सल्तनत से बहुत बड़ी चीज़ समझती हैं ? क्या आप यकीन करेंगे कि 12 साल तक मैं आपकी उस ज़मीन में घायल तड़पती, सूरत को आंखों में बसाकर जीती रही। जो

कुछ बन सका बाबाजान से कहकर किया। मैं जानती थी कि मिल न सकूंगी, मगर आपको दुनिया में एक रुतबा देने की हरस थी—वह पूरी हुई।

इलाहीबख्श पागल की तरह मुंह फाड़कर सुन रहे थे।

शाहज़ादी ने कहा—जब बाबाजान ने आपके दगा और अंगेज़ों से आपके मिल जाने का हाल कहा तो दिल टूट गया। मगर उस दिल से अब काम ही क्या? वह टूटे या साबूत रहे, आखिर अनहोनी तो हो गई—एक बार फिर मुलाकात हो गई। जहे किस्मत!

इलाहीबख्श भागे। वे चुपचाप घर से निकले। नौकर-चाकर देख रहे थे। उसके बाद किसीने फिर उन्हें नहीं देखा!

हल्दी घाटी में

मानधनी राणा प्रताप के प्रचण्ड वीरत्व और उनके विद्रोही भाई के साहस और रक्त-सम्बन्ध का मोहक वर्णन इस कहानी में है।

•

वर्षा ऋतु थी, लेकिन पानी नहीं बरसता था। हवा मन्द थी, बहुत गर्मी और घमस थी। एक पहर दिन चढ़ चुका था। कभी-कभी धूप चमक जाती थी। आकाश में बादल छाए हुए थे। अरावली की पहाड़ियों में, हल्दीघाटी की दाहिनी ओर एक ऊंची चोटी पर दो आदमी जल्दी-जल्दी अपने शरीर पर हथियार सजा रहे थे। एक आदमी बलिष्ट शरीर, लम्बे कद, चौड़ी छाती वाला था। उसकी घनी और काली मूंछें ऊपर को चढ़ी हुई थीं और आंखें सुर्ख अंगारे की तरह दहक रही थीं। वह सिर से पैर तक फौलादी जिरह-बख्तर से सजा हुआ था। इस आदमी की उम्र कोई चालीस वर्ष होगी। इसका बदन तांबे की भांति दमक रहा था।

दूसरा आदमी भी लम्बे कद का था, किन्तु वह पहले आदमी की अपेक्षा दुवला-पतला था। वह आदमी दाढ़ी को बीच में से चीरकर कानों में लपेटे हुए था। उसके सिर पर कुसुमल रंग की पगड़ी बंधी हुई थी। उसके शरीर पर भी लोहे के जिरह-बख्तर थे। एक बड़ी ढाल उसकी पीठ पर थी और दो सिरोहियां उसकी कमर में बंधी हुई थीं। पहला व्यक्ति अपने सिर पर अपना फौलादी टोप पहन रहा था, किन्तु वह ठीक जंचता नहीं था। दूसरे व्यक्ति ने आगे बढ़कर कहा—घणी खम्मा, अन्नदाता! आज का दिन हमारे जीवन के लिए बहुत महत्त्व का है। यदि आज नहीं तो फिर कभी नहीं। उसने आगे बढ़कर पहले आदमी के झिलमिले टोप को ठीक तरह से कस दिया और फिर एक विशालकाय भाला उठाकर उस व्यक्ति के हाथ में दे दिया।

पहले व्यक्ति ने मर्मभेदिनी दृष्टि से अपने साथी को देखा। उसने मज़बूती से अपनी मुट्ठी में भाले को पकड़ा और मेघ-गर्जना की भांति गम्भीर स्वर में कहा—ठाकरां, तुमने ठीक कहा : आज नहीं तो फिर कभी नहीं।

यह पहला व्यक्ति मेवाड़ का हिन्दू-पति प्रताप था और दूसरा सरदार ग्वालियर का रामसिंह तंवर था। सरदार ने अपनी कमर में दूध की भांति

सफेद पटका बांधते हुए कहा—अन्नदाता ! आज हमारी कराली तलवार बहुत दिनों की अभिलाषा को पूरा करेगी। आज हम अपनी स्वाधीनता के युद्ध में अपने जीवन को सफल करेंगे, जीतकर या हारकर। प्रताप ने कहा—बिलकुल ठीक, यही होगा। मैं आज उस भाग्यहीन राजपूतकुल-कलंक को, जिसने अपने वंश की आन को ही नहीं, राजपूत मात्र के वंश को कलंकित किया है, इस अपराध का बराबर दण्ड दूंगा। वह एक बार फिर ऊंचाई तक तनकर खड़ा हो गया और उसने एक बार अपने उस विशाल-काय भाले को अपने विशाल भुजदण्ड पर तोला।

सरदार ने अचानक चौंककर कहा—अन्नदाता ! आपकी यह मुक्ता-मणि तो यहीं पर रह गई। यह कहकर उसने पत्थर की चट्टान पर पड़ी हुई एक देदीप्यमान मणि उठाकर प्रताप के दाहिने भुजदण्ड पर बांध दी। वह सूर्य के समान चमकती हुई मणि थी। उसे देख प्रताप ने हंसकर कहा—वाह ! इस अमूल्य मणि को तो मैं भूल ही गया था; परन्तु ठाकरां, सच बात तो यह है कि अब भूलने के लिए मेरे पास बहुत कम चीज़ें रह गई हैं।

सरदार ने हाथ जोड़कर विनीत स्वर में कहा—स्वामी, आपका जीवन और आपका यह भाला जब तक सुरक्षित है, तब तक आपको संसार की किसी बहुमूल्य वस्तु की चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं। हमारे जीवन की सबसे बहुमूल्य वस्तु तो हमारी स्वतन्त्रता है। अगर हम उसकी रक्षा कर सके तो हमें ऐसी छोटी-छोटी मणियों की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

राजा ने मुस्कराकर वृद्ध सरदार की ओर देखा। सरदार मनोयोग से वह मणि राजा के दाहिने भुजदण्ड पर सावधानी से बांध रहे थे। प्रताप ने फिर मुस्कराकर कहा किन्तु ठाकरां, क्या सचमुच आपको इस बात का विश्वास है ? इस मणि में क्या चमत्कार है कि जिसके विषय में किम्वदन्ती चली आ रही है ? क्या यह सच है कि जो इस मणि को पास में रखेगा वह युद्ध में अजेय और सुरक्षित रहेगा ? सरदार ने गम्भीरता से कहा—अन्नदाता ! बुड्ढे लोगों से यही सुनते आए हैं। प्रताप ने एक बार फिर अपने भाले को हिलाया। "तब ठीक है, आज इस बात की परीक्षा हो जाएगी। परन्तु ठाकरां, इस बात का फैसला कैसे होगा कि इस मणि का प्रभाव सबसे अधिक है या मेरे इस मित्र का ?" उसने गर्वपूर्ण दृष्टि से अपने भाले की तरफ देखा, उसे एक बार फिर हिलाया। उस धुंधले सूर्य के प्रकाश में उसकी बिजली के समान चमक उसकी आंखों में कौंधा मार गई। उसने अपने होंठों को सम्पुट में कस लिया और एक बार फिर ज़ोर से अपने भाले को अपनी मुट्ठी में पकड़ा और कहा—मेरे प्यारे सरदार ? जब तक यह

वज्र मणि मेरे हाथ में है, मुझे किसी दूसरी मणि की परवाह नहीं।

पर्वत की उपत्यका से सहस्त्रों कण्ठ-स्वरों का जयघोष सुनाई पड़ा। राणा ने कहा—सेना तैयार दीखती है। अब हम लोगों को चलना चाहिए। वह आगे को बढ़ा और बुड्ढा सरदार उसके पीछे-पीछे।

तीस हज़ार योद्धा उपत्यका के समतल मैदान में व्यूहबद्ध खड़े थे। घोड़े हिनहिना रहे थे और योद्धाओं की तलवारें झनझना रही थीं। उस समय धूप कुछ तेज़ हो गई थी, बादल फट गए थे। सुनहरी धूप में योद्धाओं के जिरह-बख्तर और उनके भाले की नोकें बिजली की तरह चमक रही थीं। वे सब लौहपुरुष थे—सच्चे युद्ध के व्यवसायी, जो मृत्यु के साथ खेलते थे और जिन्होंने जीवन को विजय कर लिया था। वे देश और जाति के पिता थे। वे वीरों के वंशधर और स्वयं वीर थे। वे अपनी लोहे की छाती की दीवारें बनाए निश्चल खड़े हुए थे। चारण और वन्दीगण कड़खे की ताल पर बिरद गा रहे थे। धौंसे बज रहे थे। घोड़े और सिपाही—सब कोई उतावले हो रहे थे।

सेना के अग्रभाग में एक छोटा-सा हरियाली का मैदान था। उसमें 17 योद्धा सिर से पैर तक शस्त्रों से सजे हुए खड़े थे। उनके घोड़े उन्हीं के पास थे और वे सब भी जिरह-बख्तर से सुसज्जित थे। सेवक उनकी बागडोर पकड़े हुए थे। ये मेवाड़ के चुने हुए सरदार थे और अपने राजा की प्रतीक्षा में खड़े हुए थे।

एक सिंह की भांति राणा ने उनके बीच में पदार्पण किया। सत्रह सरदार पृथ्वी में झुक गए। उनकी तलवारें खनखना उठीं और पीठ पर बंधी हुई ढालें हिल पड़ीं। सेना ने महाराज को देखते ही वज्रध्वनि से जय-घोष किया। प्रताप ने एक ऊंचे टीले पर खड़े होकर अपने सरदारों और सेना को सम्बोधित करके कहा—मेरे प्यारे वीरो, वंशधरो! आज हम वह कार्य करने जा रहे हैं जो हमेशा हमारे पूर्वजों ने किया है। हम आज मरेंगे अथवा विजय प्राप्त करेंगे। हमारा इस युद्ध में कोई स्वार्थ नहीं है। हम लोग केवल इसलिए युद्ध कर रहे हैं कि हमारी स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप हो रहा है। क्या यहां पर कोई ऐसा राजपूत है जो पराया गुलाम बना रहना पसन्द करे? जो ऐसा हो उसे मेरी तरफ से छुट्टी है, वह अपने प्राण लेकर यहां से अलग हो जाए। परन्तु जिसने क्षत्राणी का दूध पिया है, उसके लिए आज जीवन का सबसे बड़ा दिन है। आज उसे अपने जीवन की सबसे बड़ी साध पूरी करनी चाहिए। इसके बाद प्रताप ने ललकार उठाई और उच्च स्वर से पुकारकर कहा—वीरो! क्या तुम्हारे पास तलवारें हैं। राणा ने

फिर उसी तेजस्वी स्वर में कहा—और तुम्हारी कलाइयों में उन्हें मज़बूती से पकड़ रखने के लिए बल है ? सेना ने फिर जयनाद किया, हज़ारों कण्ठ चिल्लाकर बोले—हम जीते जी और मर जाने पर भी अपनी तलवारों को नहीं छोड़ेंगे, हममें यथेष्ट बल है। राजा ने सतेज स्वर में कहा—तब चलो, हम स्वाधीनता के युद्ध में अपने जीवन और अपने नाम को सार्थक करें। एक गगनभेदी वाणी से सारा वातावरण भर गया। प्रताप उछलकर घोड़े पर सवार हो गया और तुरन्त ही सरदारों ने उसे चारों तरफ से घेर लिया। पहाड़ी नदी के तीव्र प्रवाह की भांति यह लौहपुरुषों का दल अग्रसर हुआ। धौंसा बज रहा था और कड़खे के ताल पर चारण और वन्दीगण सिपाहियों की प्रत्येक टुकड़ी के आगे उनके पूर्वजों की विरुदावलियां ओज भरे शब्दों में गाते हुए चल रहे थे।

मुगल-सैन्य एक लाख से अधिक था। जिसमें 60 हज़ार चुने हुए घुड़सवार थे। उसमें तुर्क, तातार, यवन, ईरानी और पठान सभी योद्धा थे। सवारों के पीछे हाथियों का दल था और उनपर धनुर्धारी योद्धा सजे हुए थे। दाहिनी तरफ वीरशिरोमणि मानसिंह तीस हज़ार कछवाहों को लिए हुए खड़े थे। बाईं तरफ सेनापति मुजफ्फरखां बाईस हज़ार मुगलों के साथ था। हरावल में दस हज़ार चुने हुए पठानों की फौज थी। बीच में एक ऊंचे हाथी पर शाहज़ादा सलीम अपने छह हज़ार शरीर रक्षकों के साथ युद्ध की गतिविधि देख रहा था। दोनों सेनाएं सामने होते ही भिड़ पड़ीं। प्रताप अपनी सेना के मध्य भाग में चल रहे थे। उनके दाहिने भाग में सलूम्बरा सरदार थे और बाईं ओर विक्रमसिंह सोलंकी। प्रताप ने सोलंकी शत्रु के दाहिने पक्ष पर जमकर आक्रमण करने की आज्ञा दी। इसके तुरन्त ही उन्होंने सलूम्बरा सरदार को सीधे मुगलपक्ष के बाएं भाग में घुस जाने का आदेश दिया और फिर वे तीर की भांति अपने चुने हुए वीरों के साथ मुगल-सैन्य के हरावल पर टूट पड़े। प्रताप का दुर्धर्ष वेग मुगल-सैन्य न सह सकी। हरावल टूट गया और सेना के सब प्रबन्ध में तुरन्त गड़बड़ी पैदा हो गई। सलीम ने अपनी सेना को भागते हुए देखकर अपने हाथी के पैर में जंजीर डाल दी। शाहज़ादे को दृढ़ता से खड़ा देखकर मुगल-सेना फिर से लौट आई। अब युद्ध का कोई क्रम न रह गया था। तेगा से तेगा बज रहे थे, दुधारें खड़क रही थीं, खून के फव्वारे बह निकले थे। घायलों और मरते हुओं का चीत्कार सुनकर कलेजा कांपता था। योद्धा लोग वीर-दर्प से उन्मत्त होकर घायलों और अधमरों को अपने पैरों से रौंदते हुए आगे बढ़ रहे थे। प्रताप अप्रतिम तेज से देदीप्यमान थे और वे दुर्धर्ष शौर्य से मुगल-सैन्य में घुसते जा रहे थे। सरदारों ने उनको रोकने के बहुत प्रयत्न किए;

परन्तु उनका क्रोध निस्सीम था, वे बढ़ते ही चले गए। सरदारों ने उनके अनुगमन की चेष्टा की परन्तु प्रताप उनसे दूर होते चले गए। युद्ध का बहुत कठिन समय आ गया था। प्रताप के चारों तरफ लाशों के ढेर थे परन्तु शत्रु उनकी तरफ उमड़े चले आ रहे थे। उनका चेतक हवा में उड़ रहा था। वे सलीम के हाथी के पास जा पहुंचे। उन्होंने चेतक को एड़ दी और भाले का एक भरपूर हाथ उछलकर हौदे में मारा। पीलवान मरकर हाथी की गरदन पर झूल पड़ा। सलीम ने हौदे में छिपकर जान बचाई। फौलाद के मज़बूत हौदे में टक्कर खाकर प्रताप का भाला भन्न कर टूट पड़ा। प्रताप ने खींचकर दुधारा निकाल लिया। हज़ारों मुगल उनके चारों तरफ थे, हज़ारों चोटें उनपर पड़ रही थीं। प्रताप और उनका चेतक बराबर चले जा रहे थे। प्रताप ने आंखें उठाकर देखा, वे अपनी सेना से बहुत दूर चले आए थे। उन्होंने जीवन की आशा छोड़ दी और फिर दोनों हाथों से तलवारें चलाने लगे, लाशों का तूमार लग गया। चिल्लाहट और चीत्कार के मारे आकाश रो उठा। प्रताप का सुनहरे काम का झिलमिला टोप धूप में सूर्य की भांति चमक रहा था। और उनके भुजदण्ड में बंधा हुआ वह अमूल्य रत्न आंखों में चकाचौंध लगा रहा था। धीरे-धीरे मुगल योद्धा उनपर टूटे पड़ रहे थे। प्रताप को बहुत से घाव लग गए थे। वे शिथिल होते और थके जा रहे थे। उनके शरीर का बहुत रक्त निकल चुका था। उन्होंने थकित दृष्टि से अनन्त तक फैले हुए मुगल-सैन्य की ओर देखा, एक ठंडी सांस लीं और अपने हृदय में एक वेदना का अनुभव किया। वे मृत्यु से आंख-मिचौनी खेल रहे थे।

सलूम्बरा सरदार ने दूर से देखा। वे शत्रुओं के दाहिने पक्ष को बिलकुल विध्वस्त कर चुके थे। कछवाहों से उन्होंने खूब लोहा लिया था। उन्होंने दूर से देखा, प्रताप का अकेला झिलमिला टोप और वह अमूल्य मणि मुगलों के अनन्त सैन्य-समुद्र में डूबी हुई नौका के समान एक क्षणिक झलक दिखा रहे हैं। उनके हृदय में चोट लगी। उन्होंने कहा—अरे! मेवाड़ का सूर्य तो यहीं अस्त हो रहा है। बुड्ढे बाघ ने अपने घोड़े को एड़ दी। उसकी बाग मोड़ी और अपने योद्धाओं को ललकारकर कहा—हिन्दूपति महाराणा की जय हो, वह देखो महाराणा ने शाहज़ादे के हाथी को घेर लिया, आओ चलो, आज हम प्राण देकर महाराणा का अनुगमन करें। वीरों ने हुंकार भरी। बिजली की तरह तलवारें चमकने लगीं और तलवार के जादू से रास्ता बनने लगा। और अमर वीरों की वह छोटी-सी टुकड़ी शत्रु-सैन्य को चीरती हुई क्षण-क्षण में महाराणा के निकट होने लगी। महाराणा का एक

हाथ बिलकुल निकम्मा हो गया था। अब उसमें वार करने की ताकत नहीं थी; वे केवल अपना बचाव करते थे। उनकी गर्दन कन्धे पर लटकने लगी। उन्हें मुमूर्षु अवस्था में देखकर यवन-सैन्य ने वज्रध्वनि से 'अल्लाहो अकबर' का नारा लगाया और दूसरे ही क्षण वह नाद 'जय एकलिंग' की वज्रगर्जन में विलीन हो गया। एक दफा फिर तलवारों के उस समुद्र में ज्वार आया। महाराणा ने सचेत होकर पीछे की ओर देखा: रंगीन पगड़ियां उनकी तरफ को लहराती हुई चली आ रही हैं। उन्होंने एक बार फिर चेतक को फटकारा।

दूसरे ही क्षण किसीने उनके सिर पर से वह झिलमिला टोप उतार लिया और एक दूसरी पगड़ी उनके सिर पर रख दी। वह बहुमूल्य मणि भी उनके भुजदण्ड से खोल ली गई। महाराणा ने मुरझाई हुई दृष्टि से देखा: सलूम्बरा सरदार अपने घोड़े की बाग को दांतों से पकड़े हुए उनका झिलमिला टोप सिर पर रखे हुए हैं और उनकी मणि भी सरदार के दाहिने भुजदण्ड पर बधी हुई है। वे अपनी ओर उमड़ते हुए मुगलों को ढकेलते हुए आगे बढ़ रहे हैं। प्रताप ने कहा—ठाकरां, यह क्या! सरदार ने दोनों हाथों से तलवार चलाते हुए कहा—अन्नदाता! आज यह सेवक अपने नमक का हक अदा करेगा। आप हिन्दूकुल के सूर्य हैं, पीछे को हटते जाइए। असमय में ही सूर्य को अस्त न होना चाहिए। जाइए स्वामी! सरदार ने अपने हाथ से चेतक की वाग मोड़ दी। और वे उनको बीच में करके पीछे हटने लगे। बेतोड़ लौह की मारें चारों तरफ से पड़ रही थीं, अपने-पराये की किसीको सूझ न थी। सलूम्बरा सरदार बुड्ढे बाघ की भांति भयानक वेग से हाथ चला रहे थे। प्रताप ने थोड़ी देर विश्राम पाकर चैतन्य-लाभ किया। उन्होंने कम्पित स्वर में कहा—ठाकरां, आपके वंशजों को इस राजसेवा का पुरस्कार मिलेगा। प्रताप ने चेतक को एड़ दी और वे युद्ध-क्षेत्र से बाहर आ गए। झिलमिला टोप और मणि सलूम्बरा सरदार के मस्तक और भुजदण्ड पर मुगल-सैन्य के बीच उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे थे और उसी प्रकार वह भुजदण्ड अनेकों मुगलों के सिर काट रहा था। सारा यवन-दल 'अल्लाहो अकबर' का जयनाद करता हुआ उसी झिलमिले टोप और देदीप्यमान मणि को लक्ष्य करते धावे कर रहा था। असंख्य शस्त्र उनपर टूट रहे थे। धीरे-धीरे जैसे सूर्य समुद्र में अस्त होता है, उसी तरह लहू से भरे हुए उस रण-समुद्र में वह देदीप्यमान मणि से पुरस्कृत वीर भुजदण्ड और प्रताप के झिलमिलाते टोप से सुरक्षित वह उन्नतमस्तक झुकता ही चला गया और अन्त में दृष्टि से ओझल हो गया।

युद्ध-क्षेत्र कई मील पीछे रह गया था। एक नाले के किनारे प्रताप

थकित भाव से एक पत्थर का सहारा लिए हुए पड़े थे और उनका चेतक वहीं पर पड़ा अन्तिम सांस ले रहा था। प्रताप ने पहले अंजलि में जल लेकर मुमूर्षु चेतक के मुंह में डाला। उसने जल को कण्ठ से उतारकर एक बार अपने स्वामी की ओर देखा और उसके बाद दम तोड़ दिया। वीरों का वंशधर वह प्रतापी राजा अपने उस घोड़े से लिपटकर विलाप करने लगा। उसके घावों से रक्त बह रहा था और उसके अङ्ग-अङ्ग घावों से भरे हुए थे। किसीने पुकारा—महाराज! आप जैसे वीर को इस समय कातर होने का मौका नहीं है। प्रताप ने आंखें उठाकर देखा, उनके चिर-शत्रु भाई शक्तिसिंह थे। प्रताप ने जाज्वल्यमान नेत्रों से शक्तिसिंह की ओर देखा और कहा—ऐ शक्तिसिंह, तुम आज इस समय 11 वर्ष बाद अपने उस अपमान का बदला लेने आए हो? मैंने तुम्हें मुगलों के सैन्य में खूब ढूंढ़ा। मेरे अपराधी तुम और मानसिंह थे, सलीम नहीं। तुम लोग राजपूत पिता के पुत्र होकर राजपूतनी का दूध पीकर विधर्मी मुगलों के दास बने! मैं आज तुम दोनों राजपूत कुल-कलंकियों को मारकर अपनी जाति के कलंक को नष्ट करना चाहता था! लेकिन अब तुम देखते हो कि इस समय तो मैं खड़ा भी नहीं हो सकता और मेरा प्यारा सहचर भाला उस युद्ध में टूट गया, मेरी तलवार भी टूट गई है, मेरे पास कोई भी शस्त्र नहीं है। परन्तु तुम्हारे जैसे गुलाम गीदड़, सिंह को घायल समझकर आक्रमण करें, यह सम्भव नहीं। आओ, मैं मरने से पहले एक कलंकित राजपूत से पृथ्वी माता का उद्धार करूं। प्रताप ने एक बार बल लगाकर उठने की चेष्टा की, पर वे उठ न सके। शक्तिसिंह ने तलवार फेंक दी। उन्होंने एक दाभ का टुकड़ा वहीं से उठा लिया। उसको दांतों में दबाकर दोनों हाथ जोड़कर वे आगे बढ़े। उन्होंने अपनी पगड़ी प्रताप के चरणों में रख दी और कहा—हिन्दू-पति राणा! यह विश्वासघाती, कुल-कलंकी कभी अपने को आपका भाई कहने का साहस नहीं कर सकता। तलवार मेरे पास है, उसकी धार अभी तीखी है। लीजिए महाराजा, और अपने अपराधी को दण्ड दीजिए। उसने तलवार महाराणा के आगे रख दी, और सिर झुकाकर महाराणा के चरणों में पड़ गया। राणा की आंखों में आंसू उमड़ आए, उन्होंने गद्गद कण्ठ से कहा—भाई शक्तिसिंह! मुझे क्षमा करो, मैंने तुम्हें समझा नहीं; परन्तु यदि युद्ध के पहले तुम मेरे सामने आकर यह शब्द कहते और आज मैं तुमको सच्चे सिसोदिया की तरह तलवार चलाकर मरते देखता तो मुझे बहुत आनन्द होता। शक्तिसिंह ने कहा—युद्ध के समय तक मेरा मन द्वेष के मैल से परिपूर्ण था और मैं मुगलों का एक सेनापति था। लेकिन जब मैंने आपको घायल और निःशस्त्र युद्ध से लौटते हुए देखा और देखा कि दो मुगल शत्रु

आपका पीछा कर रहे हैं तब मुझसे न रहा गया। माता का वह दूध, जो मैंने और आपने एक साथ पिया था, सजीव होकर उमड़ आया। मैंने सेना को त्यागकर उन मुगलों का पीछा किया और उन दोनों को मार गिराया। वह देखो, वे दोनों नाले के पास पड़े हैं। अब हिन्दूपति महाराज, आपकी जय हो। यह तलवार कमर से बांधिए और यह मेरा घोड़ा लीजिए, सामने की उस घाटी में चले जाइए। वहां मेरे विश्वस्त अनुचर हैं, आपके घावों का तुरन्त बन्दोबस्त हो जाएगा।

प्रताप ने आश्चर्य-चकित होकर कहा—और तुम शक्तिसिंह ? महाराज ! "मैं शाहज़ादे सलीम के पास जाकर अपना अपराध स्वीकार करूंगा और उनसे कहूंगा कि वे मुझे अपने हाथी के पैरों से कुचलवाकर मार डालें, क्योंकि मैंने उनका सैनिक होकर उनके शत्रु की रक्षा की है।" शक्तिसिंह रुका नहीं, चल पड़ा। प्रताप ने कहा—भाई ! सुनो ! शक्तिसिंह ने कहा—महाराज मेरा अपराध बहुत भारी है। मैं कभी इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि आप मुझे दण्ड दे सकते हैं। मैं यवन सेनापति से ही दण्ड चाहता हूं। शक्तिसिंह चले गए। प्रताप ने वीर भाई को पहचाना। वे बड़ी देर तक उसकी ओर देखते रहे और भाई की दी हुई तलवार कमर में बांधी और घोड़े पर चढ़कर चल दिए।

प्रातःकाल का समय था। महाराणा प्रताप पर्वत की एक गुफा में शिला पर बैठे हुए थे। पांच सरदार उनके इर्द-गिर्द थे। उनके ज़खम अब अच्छे हो चले थे। वे शक्तिसिंह की बारंबार तारीफ कर रहे थे, एक लम्बी मनुष्यमूर्ति उस गुफा के द्वार पर आकर खड़ी हो गई। वे शक्तिसिंह थे। प्रताप भुजा भरकर उनके साथ मिले। शक्तिसिंह ने वह मणि अपने वस्त्र में से निकालकर प्रताप के सामने रखी और कहा—महाराज, यह मणि सलूम्बरा सरदार ने मरते समय मुझे दी थी और वसीयत की थी कि मैं यह आपके हाथ में दूं। इसके बाद उन्होंने सलूम्बरा सरदार की वीरतापूर्ण मृत्यु का करुण वर्णन किया और वर्णन करते-करते शक्तिसिंह रो पड़े। उन्होंने कहा—महाराज, मैं अनुताप की आग में जला जाता हूं। आपके पास से लौटकर मैंने सलूम्बरा सरदार को देखा। उस समय भी उनके मुख पर मुस्कराहट आई और फिर उनके प्राण निकल गए। धन्य हैं वे सरदार, जो इस तरह अपने स्वामी के लिए प्राण देते हैं।...मैंने सलीम से अपना अपराध कह दिया था। परन्तु सलीम ने कोई दण्ड न देकर आपके पास आने को कह दिया। अब महाराज, आप मुझे दण्ड दीजिए।

प्रताप ने भाई का हाथ पकड़कर प्रेम से अपने निकट बैठाया और उसी समय फर्मान किया कि भविष्य में सलूम्बरा सरदार के वंशधर मेवाड़ की सेना में हरावल में रहेंगे और शक्तिसिंह के वंशज युद्ध-क्षेत्र में दाहिने पक्ष में रहेंगे।

नवाब ननकू

'नवाब ननकू' एक भावकथा है, जिससे चरित्र और आचार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। कहानी में कुल तीन मुख्य पात्र हैं। राजा साहब, एक शराबी, कबाबी, वेश्यागामी लम्पट रईस, जिन्होंने इसी काम में अपनी सम्पत्ति फूंक दी और अब दारिद्र्य और रोग का भोग भोग रहे हैं। दूसरी है एक विगलितयौवन वेश्या, और तीसरे हैं एक रईस के औरस से उत्पन्न वेश्यापुत्र, जो अपने को नवाब समझते हैं। कहानी में तीनों दोस्तों की एक मुलाकात का रेखाचित्र है। मुलाकात में जीवन के आगे-पीछे के समूचे जीवन की स्पष्ट झांकी अंकित करने में लेखक ने अपनी अपरिसीम कथा-निर्माण कला का परिचय दिया है। इससे भी अधिक अपनी उस विश्लेषण-सामर्थ्य को मूर्त किया है—जब कि वह चरित्र को आचार से पृथक् मानता है। तीनों ही पात्र हीन-चरित्र हैं। परन्तु उनके हृदय की विशालता, विचारों की महत्ता, भावों की पवित्रता ऐसी व्यक्त हुई है कि बड़े से बड़ा सदाचारी भी उसकी समता नहीं कर सकता। पूरी कहानी पढ़कर तीनों में से किसी भी पात्र के प्रति मन में विराग और घृणा नहीं होती, आत्मीयता और सहानुभूति के भाव पैदा होते हैं। आचारहीन व्यक्ति भी उच्च चरित्र वाले होते हैं। तथा आचार और चरित्र में मौलिक अन्तर क्या है—यह गम्भीर मनोवैज्ञानिक और आचार-शास्त्र-सम्बन्धी नया दृष्टिकोण लेखक ने कहानी में व्यक्त किया है।

•

सरदी के दिन और सनीचर की रात, कल इतवार। न दफ्तर जाने की फिक्र, न किसी काम की चिन्ता। बस, बेफिक्री से खाना खाकर जो रजाई में घुसे तो अम्बरी तमाखू का कश खींचते-खींचते ही अण्टागफील हो गए।

मगर उस मीठी नींद में शुरू में ही विघ्न पड़ गया। नीचे कोई कर्कश स्वर में चिल्ला रहा था—बाबू साहब, अजी बाबू साहब! उस वक्त आराम में यों खलल पड़ने से तबीयत झल्ला उठी। क्या मज़े की झपकी

आई थी। मैंने उठकर खिड़की से सिर निकालकर कहा – कौन है भई; इस वक्त ?

"अजी हम हैं नवाब साहब ! गज़ब करते हैं आप भाई साहब, अभी लम्हा भर हुआ है सूरज छिपे; और आपके लिए आधी रात हो गई, चीखते-चीखते गला फट गया। मुहल्ला-भर सिर पर उठा डाला।"

बड़ा गुस्सा आया उस नवाब के बच्चे पर। जी में आया, कच्चा ही चबा जाऊं। परन्तु ज़ब्त करके कहा—कहिए नवाब साहब, इस वक्त कैसे ?

"अज़ी दरवाज़ा तो खोलिए, या गली में खड़े ही खड़े राग अलापूं।"

मन ही मन दांव-पेंच खाता नीचे उतरा और कुण्डी खोली। नवाब साहब चुपचाप पीछे-पीछे जीना चढ़कर ऊपर आए; आते ही मसनद पर बेतकल्लुफी से उठंग गए। कहने लगे—खुदा की मार इस सरदी पर। हड्डियां तक ठण्डी पड़ गईं। मगर उस्ताद, खूब मज़े में आप मीठी नींद ले रहे थे।

मैंने कहा—आपके मारे कोई सोने पाए तब तो। कहिए, इस वक्त कैसे तकलीफ की ?

नवाब साहब ने बेतकल्लुफी से हंसकर कहा—यों ही, बहुत दिन से भाभी साहिबा के हाथ का पान नहीं खाया था, सोचा—पान भी खा आऊं और सलाम भी करता आऊं।

गुस्सा तो इतना आ रहा था कि मर्दूद को धकेल दूं नीचे। मगर मैंने गुस्सा पीकर कहा—पूरे नामाकूल हो तुम। कल इतवार था। कल यह सलाम की रस्म पूरी नहीं कर सकते थे, जो इस वक्त मेरे आराम में खलल डाला ?

नवाब साहब खिलखिलाकर हंस पड़े। जेब से सिगरेट का बक्स और दियासलाई निकालकर एक होंठों में दबाई, दूसरी मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा—खैर, सिगरेट तो पिओ और गुस्सा थूक दो। हां, चालीस रुपये मेरे हवाले करो और इसे रक्खो संभालकर।

उन्होंने बगल से एक पोटली निकालकर मेरे आगे सरका दी।

मैंने कहा—यह क्या बला है, और इस वक्त रुपयों के बिना कौन कमायत बरपा हो रही थी ?

नवाब साहब को भी गुस्सा आ गया। कहने लगे—कयामत नहीं बरपा हो रही थी, तो मैं यों ही झख मारने आया हूं इस वक्त ? हज़रत, यह मेरी भी पीनक का वक्त था।

"मगर इस वक्त रुपये तुम क्या करोगे ?"

"फेंक दूंगा सड़क पर, तुमसे मतलब ?"

"रुपये नहीं हैं।"

"रुपये न होने की खूब कही, बुलाऊं भाभी को ?"

"भाभी तुम्हारी क्या तोप से उड़ा देंगी, बुलाओ चाहे जिसको, रुपये नहीं हैं।"

"समझ गया, बेहयाई पर कमर कसे हुए हो। लाओ चुपके से रुपये दे दो, अभी मुझे सदर तक दौड़ना होगा।"

"सदर तक क्यों ?"

"एक बोतल व्हिस्की और गजक लेने, और क्यों।"

"अच्छा, तो हज़रत को शराब के लिए रुपये चाहिए।"

"जी हां, शराब के लिए, और कबाब के लिए भी, निकालो जल्दी से।"

"कह तो दिया, रुपये नहीं हैं।"

"तुमने कह दिया, पर हमने तो सुना ही नहीं।"

"नहीं सुना तो जहन्नुम में जाओ।"

"कहीं भी हम जाएं तुम्हारी बला से, लाओ तुम रुपये दो।"

"रुपये नहीं दूंगा, अब तुम खसकन्त हो यहां से नवाब।"

"चे खुश। रुपये तो मैं खड़े-खड़े अभी लूंगा तुमसे।"

"क्या तुम्हारा कर्ज चाहिए मुझपर ?"

"कर्ज़ ही तो मांगता हूं।"

"मैं कर्ज नहीं देता।"

"देखता हूं कैसे नहीं दोगे, बुलाओ भाभी को भी अपनी हिमायत पर।" नवाब ने गुस्से से आस्तीन चढ़ानी शुरू की।

मुझे बुरी तरह हंसी आ गई। कहा—क्या मारपीट भी करने पर आमादा हो ?

"मारपीट ! तुम मारपीट की कहते हो, मैं तुम्हें गोली न मार दूं तो नवाब ननकू नहीं।"

मैंने हंसकर कहा—गोली मार दोगे तो फिर रुपया कहां से वसूल करोगे नवाब साहब ?

"बस इसी बात को सोचकर तो तरह दे जाता हूं, निकालो रुपये।"

"लेकिन नवाब, तुम तो कभी नहीं पीते थे, आज यह क्या बात है ?"

"तो क्या मैं अपने लिए मांगता हूं। मैंने कभी पी है ?"

"फिर किसके लिए ?"

"राजा साहब के लिए।"

"अच्छा—यह बात है, अब समझा। कोई नई चिड़िया आई है क्या ?"

"राजेश्वरी आई है बनारस से।"

"तो तुम क्यों उस शराबी के लिए झख मारते फिरते हो ?"

"तब कौन झख मारे। तुम चाहते हो, राजा साहब खुद तुम्हारे दरवाज़े पर आकर चालीस-चालीस रुपल्ली के लिए ज़लील होते फिरें।"

"वे कुछ भी करें, तुम्हें क्या। जो जैसा करेगा, भोगेगा। जिसने लाखों की ज़मीन-जायदाद, ज़र-जवाहरात, सब शराब और रण्डी-भड़ुओं में फूंक दी, तुम उससे क्यों इतनी हमदर्दी रखते हो ?"

"क्या मैं हमदर्दी रखता हूं ?"

"तब ?"

"मैं मुहब्बत करता हूं उनसे भाई, उनकी इज़्ज़त करता हूं।"

"किसलिए ? आखिर सुनूं तो।"

"किसलिए ? सुनो, पहले तो वे मेरे बड़े भाई, दूसरे ऐसे दाता, ऐसे प्रेमी, ऐसे बात के धनी, ऐसे दिल वाले···कि दुनिया में चिराग लेकर ढूंढ़ो तो कहीं मिल नहीं सकते।"

"शराबी और रंडीबाज़ भी क्यों नहीं कहते ?"

"वह तुम कहो। वे शराब पीते हैं और रण्डियों से आशनाई करते हैं, इसमें किसीका क्या लेते हैं ? उन्होंने अपनी लाखों की जायदाद उन्हें दे दी, जिन्हें उन्होंने प्यार किया। आज उनका हाथ खाली है, मगर दिल बादशाह है। वे जीते जी बादशाह रहेंगे। मैं उन्हें पसन्द करता हूं, प्यार करता हूं, इज़्ज़त करता हूं। मैं नहीं बर्दाश्त कर सकता कि वे दुनिया के आगे हाथ फैलाएं।"

"और तुम उनके लिए भीख मांगते फिरते हो।"

"किससे मैंने भीख मांगी है, कहो तो", नवाब ने तैश में आकर कहा।

"यह अभी तुम चालीस रुपये मांग रहे हो ?"

"और यह क्या ?"

नवाब ने सामने की पोटली की ओर इशारा किया।

उसे तो मैं भूल ही गया था। मैंने देखा—वह एक ज़री के काम का कीमती लहंगा है।

नवाब ने कहा—बेचना चाहूं तो खड़े-खड़े दो सौ में बेच दूं। तुमसे तो मैं चालीस ही मांग रहा हूं।

"लहंगा क्या राजा साहब ने दिया ?"

"वे क्यों देने लगे ? अम्मी जान का है। राजेश्वरी आज आई थीं। मुझे बुलाकर राजा साहब ने कहा—नवाब, हाथ में इस वक्त कुछ नहीं है, राजेश्वरी के लिए कुछ खाने-पीने का बन्दोबस्त कर दो। आंखें उनकी शर्म से झुकी थीं, और लाचारी से भीग रही थीं। बस इतनी ही तो बात है।"

"अच्छा और तुम चुपके से घर आए, यह लहंगा उठाया और यहां आ धमके।"

"जी हां, और तुम्हारी नींद हराम कर दी ! बहुत हुआ अब, बस अब लाओ रुपये दो।"

मैंने चुपके से दस-दस के चार नोट नवाब के हाथ पर रख दिए। मेरी आंखों में आंसू आ गए, और मैंने वह लहंगा उसी तरह लपेटकर नवाब की ओर बढ़ाते हुए कहा—इसे लेते जाओ।

नवाब ने आपे से बाहर होकर चारों नोट फेंक दिए। लाल होकर कहा—अच्छा, तो हज़रत मुझे भीख देने की जुर्रत करते हैं।

"नहीं भाई, ऐसा क्यों सोचते हो, मगर यह लहंगा मैं नहीं रख सकता।"

"तो तुम्हारे रुपये भी नवाब नहीं ले सकता। आज राजा कामेश्वर-प्रसादसिंह खाली हाथ हैं, और नवाब ननकू अपनी अम्मी जान का लहंगा गिरवी रखने पर लाचार हैं, मगर आप यह मत भूलिए कि वे दोनों सलीमपुर के राजा महाराज नन्दनसिंह के नुतफे से पैदा हुए हैं, जो तीन बार सोने से तुले थे, और जिन्होंने ग्यारह हाथी ब्राह्मणों को दान दिए थे। जिनकी दी हुई जागीरों को सैकड़ों शरीफज़ादों की आस-औलाद आज भोग रही है। इलाके भर में जिनके पेशाब से चिराग जलते थे।" मैंने खड़े होकर खुशामद करते हुए कहा— वह ठीक है नवाब साहब, मगर ये रुपये तुम मेरी तरफ से राजा साहब को नज़र करना।

"हरगिज़ नहीं, राजा साहब कभी किसीकी नज़र कबूल नहीं करते। तुम यह लहंगा गिरों रखकर चालीस रुपये देते हो तो दो।"

लाचार मैंने हामी भर ली। मैंने लहंगे को उसी तरह लपेटकर रख लिया और नवाब रुपये जेब में रखकर उठ खड़े हुए।

मैंने कहा—यह क्या नवाब, भाभी का पान बिना खाए और बिना सलाम किए चले जाओगे ?

"हरगिज़ नहीं" नवाब ने बैठते हुए कहा—बुलाओ तो उन्हें।

"मैंने पत्नी को नीचे से बुलाया। वे बच्चों को दूध पिलाने और सुलाने की खटपट में थीं; नवाब को एक लफंगा आदमी समझती थीं। मेरे पास उसका आना-जाना और चाहे जब रुपये-पैसे ले जाने को वे हमेशा नापसन्द

करती थीं। उन्होंने आकर कहा—इस वक्त मेरी तलबी क्यों हुई है ?

"यह इन नवाब साहब से पूछो।"

"यही कहें ?"

"पान खिलाइए तो कहूं।"

"कहो, पान भी मिल जाएगा।"

"वादे की सनद, झपाके से दो बीड़ा बढ़िया पान ले आइए।"

पत्नी चली गईं और एक तश्तरी में कई बीड़े पान लेकर लौटीं। उसमें से दो बीड़े उठाकर नवाब ने हाथ में लिए, अदब से मेरी पत्नी के सामने खड़े हुए और ज़मीन तक झुककर कहा—सलाम बड़ी भाभी, आपका यह गुलाम नवाब ननकू आपको सलाम करता है, और आपकी दुआ की इस्तिजा रखता है।

पत्नी मुस्कराईं। उन्होंने कुछ झेंपते हुए कहा—कभी बच्चों को भी नहीं भेजते नवाब साहब; एक बार भेजो।

"जो हुक्म बड़ी भाभी, सलाम।"

नवाब साहब ने और एक सलाम झुकाई और चले गए।

मेरी नींद बहुत रात तक गायब रही। मैं अन्दाजा न लगा सका कि यह व्यक्ति संसार के सब मनुष्यों से कितना ऊंचा है ?

कमरे में एक ओर अंगीठी जल रही थी। राजा साहब पलंग पर लेटे थे और एक खिदमतगार धीरे-धीरे उनके पांव सहला रहा था। राजेश्वरी नीचे फर्श पर बैठी छालियां काट रही थी। चांदी का पानदान सामने खुला रखा था। राजा साहब गंगा-जमुनी काम की गुड़गुड़ी पर अम्बरी तम्बाकू पी रहे थे और धीरे-धीरे राजेश्वरी से बातें कर रहे थे।

राजेश्वरी की उम्र चालीस को पार कर चुकी थी। बदन उसका कुछ भारी हो चला था, और माथे पर की लटों में चांदी की चमक अपनी बहार दिखा रही थी। फिर भी उसकी पानीदार आंखों और मृदु मुस्कान में अभी भी मोह का नशा भरा था।

राजेश्वरी ने कहा—सरकार ने यों नज़रें फेर लीं, मुद्दत हुई पैगाम तक न भेजा, सुनती रहती थी, हुज़ूर के दुश्मनों की तबीयत खराब रहती है। आखिर जी न माना, बेहया बनकर चली आई।

"मुझे निहाल कर दिया तुमने इस वक्त आकर राजेश्वरी, दिल बाग-बाग हो गया। क्या कहूं, बहुत याद करता हूं तुम्हें—मगर…"

"हुज़ूर की नज़रे इनायत पर मैंने हमेशा फख्र किया है, और मरते दम तक करूंगी।"

"तुम जिओ राजेश्वरी, ईश्वर तुम्हें खुश रखे। यह मूज़ी बीमारी—क्या कहूं, अब तो हिलने-डुलने से भी लाचार हो गया हूं। पर यह सब उस भगवान् की दया है। फिर मुझे अपनी लाचारी का क्या गम है, जब तुम दुनिया की तमाम खुशी लेकर यहां आ जाती हो।"

राजेश्वरी ने चार बीड़ा पान बनाकर राजा साहब को अदब से पेश किए। राजा साहब ने मुस्कराकर पान लेकर मुंह में रखे।

खिदमतगार ने आकर अर्ज़ की—हुज़ूर, कुंवर साहब सलाम के लिए हाज़िर हुए हैं।

"आएं वे"—राजा साहब ने धीरे से कहा।

कुंवर साहब ने झुककर राजा साहब को सलाम किया और पैताने की ओर अदब से खड़े हो गए।

राजा साहब ने कहा—चाची को सलाम नहीं किया बेटे! कुंवर साहब ने आगे बढ़कर राजेश्वरी को सलाम किया, और दो कदम पीछे हट गए।

राजेश्वरी खड़ी हुई। आगे बढ़कर कुंवर साहब के पास पहुंची, उनके मुंह पर प्यार से हाथ फेरा, और दो अशर्फियां निकालकर उनकी मुट्ठी में ज़बरन थमा दीं।

कुंवर साहब ने पिता की ओर देखा।

राजा साहब ने कहा—ले लो, और चाची को फिर मुकर्रर सलाम करो।

कुंवर साहब ने फिर झुककर सलाम किया। राजेश्वरी ने दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। राजा साहब ने इशारा किया और कुंवर साहब चले गए।

एक ठण्डी सांस खींचकर राजा साहब ने कहा—इस निकम्मे बाप ने अपने बेटे के लिए भी कुछ न छोड़ा राजेश्वरी, मगर तसल्ली यही है कि ज़हीन है, पेट भर लेगा।

"हुज़ूर ऐसा क्यों फर्माते हैं। इन मुबारक हाथों से भीख पाकर लोगों ने रियासतें खड़ी कर ली हैं। दुनिया में दिल ही तो एक चीज़ है हुज़ूर, भगवान् भी यह सब देखता है। वह उस आदमी की औलाद पर बरकत देगा जिसने अपनी ज़िन्दगी में सब को दिया ही है, लिया किसीसे भी कुछ नहीं।"

राजा साहब ने हाथ बढ़ाकर राजेश्वरी का हाथ पकड़ लिया। बहुत देर तक कमरे में सन्नाटा रहा। दो पुराने किन्तु पानीदार दिल मन ही मन एक-दूसरे को यत्न से संचित स्नेह से अभिषिक्त करते रहे।

आखिर राजा साहब ने एक ठण्डी सांस भरी, और गुड़गुड़ी में एक कश लगाया।

नवाब ननकू हांफते हुए आ बरामद हुए। उनकी नाक पर की ऐनक नाक की नोक पर खिसक आई थी। आते ही उन्होंने खितमदगार को एक डांट दी—अरे कम्बख्त, बदनसीब, अंगीठी में और कोयले क्यों नहीं डाले, वह बुझ रही है। नवाब साहब जब तक हुक्म न दें, ये नवाब के बच्चे काम न करेंगे। राजा साहब को दौरा हो गया, तो याद रख कच्चा चबा जाऊंगा। उठ, जल्दी कोयले डाल।

खिदमतगार चुपके से उठ गया। नवाब ने ही-ही हंसते हुए कहा—देखा राजेश्वरी भाभी, खिदमतगार साले नवाब ननकू के आगे बन्दर की तरह नाचते हैं। मगर मुंह पर कहता हूं, बिगाड दिया है राजा साहब ने, नौकरों को बहुत मुंह लगाना अच्छा नहीं।

"लेकिन नवाब, उन गरीबों को छह-छह महीने की तनखवाह नहीं मिलती है, बेचारे मुहब्बत के मारे पड़े हैं।"

"तो इससे क्या ? उनके बाप-दादों ने इतना खाया है कि सात पीढ़ी के लिए काफी है।"

"मगर उन्होंने खिदमत भी तो की है।"

"तो रियासतें भी तो पाई हैं।"

"अच्छा देखूं तो, राजेश्वरी के लिए क्या-क्या चीज़ लाए हो।"

"देखिए और दाद दीजिए नवाब को ?"

नवाब ने बोतल बगल से निकाली। और भी बहुत-सा सामान।

"अरे, यह इतनी खटपट किसलिए की नवाब साहब !" राजेश्वरी ने कहा।

"जी, जैसे आप चिऊंटी के बराबर तो खाती ही हैं। फिर आईं कितने दिन बाद हैं राजेश्वरी भाभी ! जानती हैं; राजा साहब कितना याद करते हैं। जब राजेश्वरी जबान पर चढ़ती हैं, आंखें गीली हो जाती हैं। अम्मी जान कहती थीं, बड़े महाराज का भी यही हाल था, ज़रा-सी बात पर दिल भारी कर लेते थे।"

"वे देवता थे नवाब साहब।"

"और ये ?"

"ये; इन्हें पहचाना किसने है अभी।"

"दुनिया ऐसों को कभी न पहचान पाएगी।"

खिदमतगार अंगीठी टंच करके रख गया। नवाब साहब ने खुश होकर कहा—यह बात है रामधन, मगर देखो, मैंने तुम्हें एक गाली दी है, और

ये दो रुपये इनाम देता हूं।

नवाब ने दो रुपये निकालकर रामधन की ओर बढ़ा दिए।

रामधन ने नवाब के पैर छूकर कहा—हुज़ूर, आपकी गालियां खाकर ही तो जी रहा हूं। रुपया-पैसा सरकार का दिया बहुत है।

"मगर यह भी रख लो, महरिया को एक बढ़िया-सी चुनरी ला देना।"

"वह उस दिन हवेली गई थी सरकार, तो बेगम साहिबा ने जाने क्या-क्या लाद दिया था, गट्ठर भर लाई थी।" नवाब ने तैश में आकर कहा—अबे, रुपये लेता है या मंतिख छांटता है, क्या लगाऊं धौल? रामधन ने रुपये लेकर उन्हें और राजा साहब को सलाम किया।

राजा साहब ने हंसकर कहा—देखा राजेश्वरी, नवाब का इनाम देने का तरीका।

नवाब खिलखिलाकर हंस पड़े। उन्होंने कहा—झपाके से तश्तरियां ला, गिलास ला, पैग ला। जल्दी कर।

क्षण-भर में ही सब साधन जुट गए। राजा साहब तकिए के सहारे उठंग गए। शराब का दौर शुरू हुआ। नवाब ने गिलास में सोड़ा और शराब भरकर कहा—राजेश्वरी, राजा साहब की तन्दुरुस्ती और बरकत के लिए। तीनों ने हंसती हुई आंखें मिलाईं और शराब की चुस्कियां लेने लगे।

राजेश्वरी ने कहा—इस सरदी में बहुत दौड़-धूप की नवाब साहब!

"मान गईं न आप नवाब को, लीजिए इसी बात पर दूसरा पैग।"

"नहीं नवाब, मैं तो कभी पीती ही नहीं। बहुत मुद्दत हुई, जब से महाराज की तबीयत नासाज़ रहने लगी। आज मुद्दत बाद मुंह से लगा रही हूं।"

"तो पूरी कसर निकालिए राजेश्वरी भाभी, नवाब को इस ठण्डी रात में उस साले ठेकेदार से बहुत मगज़पच्ची करनी पड़ी। साला वही रद्दी माल पटील रहा था। मैंने कहा : वह बोतल निकाल जो उस दिन हमारे सरकार की खिदमत में गई थी। और यह कबाब, सच कहता हूं राजेश्वरी भाभी, कस्बे में दूसरा नहीं बना सकता।"

"वाकई बहुत अच्छे बने हैं, मगर आप तो खाते ही नहीं नवाब साहब!"

"वाह, खिलाने में जो मज़ा है, वह खाने में कहां? देखा था अम्मी को, यही एक शौक उन्हें मरते दम तक रहा—एक से एक बढ़कर चीजें बनाना और खिलाना।"

"मुझे याद है नवाब, मैं तब बहुत बच्ची थी, आपा के साथ आती थी, वे छोड़ती ही न थीं—खींच ले जाती थीं। जितना खिलाती थीं; क्या कहूं।"

"मगर अब अम्मी तो हैं नहीं, नवाब उनका नालायक लड़का है, उसने विरासत में अम्मी की वह आदत पाई है। लीजिए, यह पैग तो पीना होगा।"

"मगर उधर तो देखो नवाब, महाराज ने सिर्फ होंठों से छूकर ही गिलास रख दिया है, पी कहां ?"

"क्या कहूं, राजेश्वरी, तकलीफ देती है, पी नहीं सकता। डाक्टरों ने भी मना कर दिया। मगर तुम पियो राजेश्वरी, आज मैं बहुत खुश हूं। लाओ नवाब, राजेश्वरी को एक पैग मैं भरकर दूं।"

"और हुज़ूर, एक नवाब को भी।"

"अरे, यह कब्र से ? तुम तो कभी पीते नहीं थे।"

"आज ही से, अभी-अभी एक पैग पिया है मैंने।"

"राजा साहब ने दो पैग भरकर तैयार किए। गिलास में भरकर कहा —लो राजेश्वरी, और तुम भी नवाब।"

"वाह हुज़ूर यों नहीं, ज़रा-सा जूठा कर दीजिए कि यह जाम पाक तबर्रुक हो जाए।" नवाब ने कहा।

राजा साहब हंस दिए। उन्होंने नवाब का हाथ पकड़कर और खींचकर छाती से लगा लिया। फिर आंखों में आंसू भरकर कहा—ननकू, मेरे प्यारे भाई, हमारी मां दो थीं, मगर वालिद एक थे। फिर भी तुम मेरे सगे भाई हो। ऐसे, जैसा दूसरा मिलना मुश्किल है। और ननकू, मैं सिर्फ प्यार की बदौलत ही जी रहा हूं। उन्होंने प्याला होंठों से छूआकर नवाब को दिया और नवाब गटागट पी गए। उनकी आंखों में आंसू और होंठों में हंसी बिखर रही थी।

नवाब ने कहा—राजेश्वरी भाभी, बहुत दिन से सूने-सूने दिन जा रहे थे। आज तो कुछ जंच जाए।

"मगर नवाब, गले में अब सुर तो रहे ही नहीं।"

"बेसुरा ही सही।"

महाराज ने हंसकर कहा राजेश्वरी, आज नवाब को बहुत मेहनत करनी पड़ी है, उसकी बात रख लो।

"जो हुक्म, मगर मेरी एक अर्ज़ है।"

"कहो।"

"नवाब साहब को जो तबर्रुक बख्शा गया है, वही लौंडी को भी

इनायत हो।"

"ओह, अच्छा ठहरो, सब्र करो।"

नवाब ने इशारा किया। रामधन तबला, हारमोनियम ले आया।

हारमोनियम नवाब खींच बैठे, और रामधन ने चारों ओर तकिए लगाकर राजा साहब को आराम से बैठाकर तबले उनकी गोद में रजाई में लपेटकर रख दिए। अम्बरी की तमाखू की एक नई चिलम चढ़ा दी। तबले पर हल्की चोट देते हुए राजा साहब ने कहा—राजेश्वरी, अभी उंगलियों पर लकुए का असर नहीं है, काम दे रही हैं।

राजेश्वरी ने चुपचाप आंखों में प्यार भरकर राजा साहब पर उंडेल दिया। और अलाप लिया। हारमोनियम पर नवाब की अभ्यस्त उंगलियां नाचने लगीं, और तबले पर मृदु मन्द ताल नृत्य करने लगा।

राजेश्वरी की प्रौढ़ स्वर-लहरी ने वातावरण में एक प्यास उत्पन्न कर दी। यह वैसी न थी, जैसी वासना और यौवन की आंधी के झोंकों में मिली रहती है। यहां तीन प्रेमी विश्वस्त, पुराने और ऊंचे हृदय, अपने भौतिक आनन्द की चरम अनुभूति ले रहे थे। वे लोग आप ही अपनी कला पर मुग्ध थे, आप ही अपनी तारीफ कर रहे थे, आप ही अपने में पूर्ण थे।

"तो हुज़ूर, अब कब ?"

"जब मर्ज़ी हो राजेश्वरी।"

"तबीयत होती है कि कुछ दिन कदमों में रहूं।"

"मैं भी चाहता तो हूं राजेश्वरी, पर तुम्हारी तकलीफ का ख्याल करके चुप रह जाता हूं। देखती हो, मकान कितना गंदा है, सिर्फ दो ही खिदमतगार हैं। इन्हें भी महीनों तनखाह नहीं मिलती, पर पड़े हुए हैं। तुम इन तकलीफों की आदी नहीं हो।"

"मगर हुज़ूर, क्या मैं उन खिदमतगारों से भी गई-बीती हूं ?"

"नहीं, नहीं राजेश्वरी, मैं तुम्हें जानता हूं।"

"मगर हुज़ूर अपने को नहीं जानते, मेरी वह कोठी, जायदाद, नौकर-चाकर सब किसकी बदौलत हैं, हुज़ूर ने जो पान खाकर थूक दिया उसीकी बदौलत। अब हुज़ूर गरीब हो गए तो पुराने खादिम क्या बेगाने हो जाएंगे ?"

राजेश्वरी की आंखें भर आईं। कुछ ठहरकर उसने कहा—शर्म के मारे मैं खिदमतगारों को नहीं लाई, इस टुटहे इक्के पर आई हूं। मैं कैसे बर्दाश्त कर सकती थी कि मालिक जब इस हालत में हों तो उनकी बांदियां ठाठ दिखाएं।

"नहीं नहीं, राजेश्वरी, यह बात नहीं। पर मैं अपनी आंखों से तुम्हें तकलीफ पाते देख नहीं सकता। कभी देखा ही नहीं।"

"इसीसे हुज़ूर, मुझे अभी ज़बर्दस्ती भेज रहे हैं, मेरी नहीं सुनते।"

"इसीसे राजेश्वरी।"

"और इस लौंडी का कभी कोई तोहफा भी नहीं कबूल करते? उस बार जब ज़नाना महल नीलाम हो रहा था, मैंने कितनी आरज़ू की थी कि मुझे रुपया चुकता कर देने दीजिए। पुरखों की यादगार है, सब रियासत गई। मगर रहने का महल···आप मेरे आंसुओं से भी तो नहीं पसीजे हुज़ूर, आप बड़े बेदर्द हैं।"

राजेश्वरी फूटकर रो पड़ी, और राजा साहब के सीने पर गिर गई। राजा साहब, उसके सिर पर हाथ फेरते रहे। फिर कहा—तुम भी बच्ची हो गई हो राजेश्वरी, अब भला उतना बड़ा महल मैं क्या करता? अकेला पंछी। फिर उसमें अब खुल गया ज़नाना अस्पताल, कितने लोगों का भला होता है। बोर्ड ने खामखाह मेरा नाम अस्पताल के साथ जोड़ दिया है।

"जी हां खामखाह ही। वह लाखों की स्टेट जो कौड़ियों में दे दी। और अब हुज़ूर इस किराए के मकान में बहुत खुश हैं।"

"बहुत खुश, राजेश्वरी, बहुत खुश। न ऊधो का लेन, न माधो का देन। लेकिन बहुत देर हो रही है राजेश्वरी, गाड़ी पकड़नी है। स्टेशन काफी दूर है, और रास्ता बड़ा खराब है। तुम्हारा इक्का आ गया?"

"धक्के दीजिए मुझे, बुढ़िया जो हो गई हूं, अब आप यही तो करेंगे।"

राजा साहब असंयत होकर पलंग से आध उठ गए। राजेश्वरी को खींचकर छाती से लगा लिया। फिर प्यार से उसके गंगाजमुनी बालों की लटों को उंगलियों में लपेटते हुए कहा बुड्ढा-बुढ़िया कौन होता है राजेश्वरी, मेरी आंखों में तुम वही—नये केले के पत्ते से रूप वाली, अछूते यौवन और अपार प्यार वाली, मेरे दिल और दिमाग की तरावट राजेश्वरी हो। तुम या मैं भले ही बूढ़े हो जाएं, लेकिन इन आंखों में झांककर जिसने तुम्हें देखा है, वह बूढ़ा नहीं और तुम्हारे भीतर बैठकर जो एक-एक मोती तुम्हारी आंखों में सजाता जा रहा है, वह भी बूढ़ा नहीं।

राजेश्वरी धीरे-धीरे राजा साहब के मुंह के बिलकुल पास फर्श पर बैठ गई। रामधन अम्बरी तमाखू चढ़ाकर गुड़गुड़ी रख गया। राजा साहब चुपचाप तमाखू पीने लगे। तमाखू की खुशबू ने कमरे को मस्त कर दिया।

राजेश्वरी ने कहा—हुज़ूर वादा-वक्फ हो।

राजा साहब ने भौंहें सिकोड़कर राजेश्वरी की ओर देखकर कहा—वादा?

"जी !"

"क्या ?"

"तबरुंक।"

"ओह, भूली नहीं राजेश्वरी।"

"भूलने की एक ही कही, कल से आस लगाए हूं। नवाब के सामने फिर नहीं कहा।"

राजा साहब कुछ देर चुपचाप गुड़गुड़ी पीते रहे। फिर कहा—ज़रा और पास आओ तो राजेश्वरी।

राजेश्वरी बिलकुल राजा साहब के मुंह के पास खिसक गई।

राजा साहब ने गुड़गुड़ी की सोने की मूनाल उसके होंठों में लगाकर कहा, एक कश खींचो तो राजेश्वरी।

"लेकिन, लेकिन हुज़ूर—"

"ऐन खुशी होगी, खींचो एक कश।"

राजा साहब की आंखों में प्यार का सारा ही रस उमड़ आया। राजेश्वरी ने आनन्द-विभोर होकर गुड़गुड़ी से कश खींचा।

"खुश हुई अब राजेश्वरी।"

"ओह हुज़ूर, कहीं खुशी से मेरी छाती न फट जाए। हुज़ूर ने गुड़गुड़ी-खास इनायत करके मेरी सात पीढ़ियों को तार दिया।"

राजा साहब ने खिदमतगार से कहा—रामधन, चिलम ठण्डी कर दे और गुड़गुड़ी उस अखबार में लपेटकर इक्के में रख आ।

राजेश्वरी का मुंह सूख गया। उसने कहा, यह आप क्या कर रहे हैं ?

"मेरा दिल बाग-बाग है, दुलखो मत।"

"मगर हुज़ूर···"

"मैं हुक्म देता हूं—मत बोलो।"

राजेश्वरी का सिर नीचे को झुक गया। उसने खड़े होकर झुककर राजा साहब को सलाम किया और रोती हुई चली गई। राजा साहब चित्त अपने पलंग पर पत्थर की मूर्ति की भांति निश्चल-निर्वाक् पड़े रहे।

"यह क्या तमाशा है रामधन, महाराज मिट्टी की गुड़गुड़ी में तमाखू पी रहे हैं। गुड़गुड़ी-खास क्या हुई ?" नवाब ने कमरे में आते ही हैरान होकर पूछा। रामधन चुपचाप खड़ा रहा। उसे बाहर जाने का इशारा करते हुए राजा साहब ने मुस्कराकर कहा—यहां आओ नवाब, मैं बताता हूं।

नवाब ननकू एकदम पलंग के पास जा खड़े हुए, राजा साहब ने

हंसकर कहा—बैठो।

"मगर मैं पूछता हूं गुड़गुड़ी-खास क्या हुई ?"

"बैठो तो कहूं।"

नवाब ने बैठकर कहा—कहिए।

राजा साहब ने रजाई से हाथ बाहर निकालकर नवाब का हाथ पकड़ लिया। कहा—नाराज़ न हो नवाब, राजेश्वरी को दे दी।

"क्या उन्होंने मांगी थी ?"

"नहीं, मगर उसे खाली हाथ कैसे जाने देता। तुम देखते ही हो, खानदान की वही एक चीज़ मेरे पास बची थी।"

नवाब कुछ देर होंठ चबाते रहे, फिर बोले—मगर आप मिट्टी की गुड़गुड़ी में तमाखू नहीं पी पाएंगे। मैं गुड़गुड़ी लाता हूं।

"कहां से ?"

"घर से।"

"कहां पाई।"

"अम्मी जान की है, बड़े महाराज ने बख्श दी थी। मेरे पास यह अब तक पाक धरोहर थी। अब आज काम आएगी।"

राजा साहब ने कहा—बड़े महाराज ने जो चीज़ बख्श दी, वह मैं वापस कैसे ले सकता हूं !

"तो अब हुज़ूर नवाब को जीने न देंगे ?"

राजा साहब हंस दिए। मीठे स्वर से बोले—खैर, इस अम्र पर पीछे गौर कर लिया जाएगा। पर मिट्टी की गुड़गुड़ी में तम्बाकू बहुत मीठा लगता है नवाब। हां, यह कहो—रात सामान कैसे जुटाया था। मैं जानता हूं तुम्हारे पास छदाम न था।

"जुट गया यों ही नवाब हूं, कोई अदना आदमी नहीं।"

"मगर सच-सच कहो।"

"झूठ से क्या फायदा ? चालीस रुपये बाबू साहब से लिए थे।"

"बड़ी तकलीफ दी उन्हें। अब ये रुपये दिए कैसे जाएं।"

"जल्दी नहीं है सरकार, रहन पर लाया हूं—यों ही नहीं, जब हाथ खुला होगा, दे देंगे।"

"रहन क्या रक्खा ?"

"एक अदद था।"

"क्या अदद, बताओ।"

"आप तो धांधली करते हैं, आपको मतलब ?"

"तुम्हें मेरी कसम नवाब।"

"ओफ !"

"कहो-कहो ।"

"अम्मी का लहंगा था ।"

राजा साहब निश्चल पड़ गए । उनकी आंखों की दोनों कोरों से आंसू बह रहे थे, और उनका कांपता हुआ हाथ नवाब के हाथ में था ।

ककड़ी की कीमत

यह दिल्ली के बीते हुए दिनों के एक रईस की इज़्ज़त की हृदयग्राही कहानी है :

•

आज तो दिल्ली का सब रंग-ढंग ही बिगड़ गया है। बाज़ार में, मकानों में, चाल-ढाल में, सड़कों में, सबमें विलायतीपन आ गया है। जब से दिल्ली भारत की राजधानी बनी है और नई दिल्ली की चकाचौंध को मात करने वाली विचित्र नगरी बसी है, तब से दिल्ली यद्यपि पंजाब से पृथक् अलग सूबा बन गया है, फिर भी उसमें बुरी तरह से पंजाबीपन भर गया है। नई दिल्ली जब बस रही थी। तब ढेर के ढेर पंजाबी सिक्ख और सभी उत्साही लोग—जिन्होंने पंजाब के गेहूं और उर्द एवं चने खाकर अपने शरीरबल को खूब वृद्धि दी है—नई दिल्ली पर चढ़ दौड़े। ठेकेदार से लेकर साधारण मज़दूर तक साहसी पुरुष भर गए। उन्होंने नई दिल्ली में प्रारम्भ में कोड़ियों के मोल ज़मीन ली और बस गए। अब नई दिल्ली में वे सरदारजी होकर मोटर में दौड़ते हैं; वीरभोग्या वसुन्धरा। दिल्ली के महीन आदमी न जाने कहां खो गए। अब जगह-जगह होटल खुल गए हैं। लाइन की लाइन खालसा होटलों की दुकानें आप दिल्ली के बाज़ारों में देख सकते हैं, जहां झटका पकने का साइनबोर्ड लगा होगा। और वहां अनगिनत सरदारगण बड़े-बड़े साफ़े बांधे, लम्बी दाढ़ी फटकारे, कोट पेंट, बूट डाटे, खाट या टेबुल पर बैठे रोटियां खाते दीख पड़ते हैं। छुआछूत को तो इन्होंने डंडे मारकर दिल्ली से नज़ाकत के साथ दूर ही कर दिया है। शाम को आप ज़रा चांदनी चौक में एक चक्कर लगाइए। पंजाबी युवतियां और प्रौढ़ाएं बारीक दुपट्टा माथे पर डाले, सलवार डाटे, मुंह खोले बेफिक्री से कचालू वाले के इर्द-गिर्द बैठकर कचालू-आलू खाती नज़र आएंगी।

कभी-कभी ब्याह-शादी के जलूसों में जौहरियों की वह देहलवी नुक्केदार पगड़ियां कुछ पुराने सिरों पर नज़र आ जाती थीं। परन्तु वह नीमास्तीन अंगरखे, वमली के जूते, दुपल्ली दो माशे की टोपी, बगल में महीन शर्बती का दुपट्टा तो बिल्कुल हवा हो गए हैं। सरदे के दामन और सफ़ेद शर्बती की चादरें लपेटे अब दिल्ली की ललनाएं नहीं दीख पड़तीं। न अब वे जड़ाऊ ज़ेवर ही उनके बदन पर दीख पड़ते हैं जिनकी बदौलत दो

हज़ार जड़िए और पांच हज़ार सुनार दिल्ली से अपनी रोज़ी चलाते थे। अब तो बारीक क्रेप की फैशनेबिल साड़ियां, उनपर नफासत से कढ़ी हुई बेलें, बिना आस्तीन के जम्पर, जिनमें से आधी छाती और समूची मृणाल-भुजाएं खुला खेल खेलती हैं, साथ में ऊंची एड़ी के रंग-बिरंगे सेंडिल-जूते —चांदनी चौक में देखते-देखते आंखें थक जाती हैं। देश की इन पर्दाफाश बहिनों में सुशिक्षिताएं तो बहुत ही कम हैं। ज़्यादातर मोर का पंख खोंसकर मोर बनने वाले कौए जैसी हैं। इसका पता उनके चेहरे पर पुते हुए फूहड़ ढंग के पाउडर से, होंठों में खूब गहरे लगे गुलाबी रंग से, तीव्र सेंट से तराबोर चटकीले रूमाल से, बालों में चमचमाते नकली जड़ाऊ पिनों से अनायास ही लग जाता है। कभी-कभी तो इन अधकचरी मेम-साहिबा की कोमल कलाइयों में दिल्ली फैशन के सोने के दस्तबन्दों और अनगिनत चूड़ियों के बीच फैन्सी रिस्टवाच तथा पैरों के ज़ेवरों पर ऊंची एड़ी का सैण्डिल शू मन में अज़ब हास्य-रस उत्पन्न करता है; खासकर उस हालत में जब कि उनके पालतू पति महाशय पतलून पर लापरवाही से स्वेटर और कोट डाले उनके पीछे-पीछे उनकी खरीदी चीज़ों का बंडल लिए बड़े उल्लास से चलते-फिरते और मुसाहिबी करते नज़र आते हैं।

38 वर्ष हुए। उस समय दिल्ली के चांदनी चौक में अब जहां अगल-बगल पैदल चलने वालों के लिए पटरियां बनी हैं, वहां सड़कें थीं। सड़कें कंकड़ की थीं। उनमें बहली, मझोलियां, इक्के सरपट दौड़ा करते थे। दोनों समय उन सड़कों पर छिड़काव हुआ करता था। बीचोंबीच अब जहां चमचमाती सीमेंट की पुख्ता सड़क है, वहां नहर पर पटरी बनी थी। उसके दोनों ओर खूब घने वृक्षों की छाया थी। ज्येष्ठ-वैशाख की दोपहरी में भी वहां शीतल वायु के झोंके आया करते थे। उस पटरी पर बड़ी-बड़ी भीम-काय बेंतों की छतरियां लगाए खोंचे वाले अपनी-अपनी छोटी-छोटी दुकानें लिए बैठे रहते थे। उनमें बिसाती टोपी वाले, टुकड़ी वाले, घी के सौदे वाले, दही-बड़े वाले, चने की चाट वाले, कचालू वाले, मेवाफरोश तथा फल वाले सभी होते थे। उनसे भी छोटे दुकानदार अपनी छोटी-सी दुकान को किसी टोकरी में सजाए गले में लटकाए घूम-फिरकर सौदा बेचा करते थे। सैकड़ों आदमी उन वृक्षों की घनी छाया में पड़े हुए थकान उतारा करते थे। घंटाघर के सामने कमेटी की संगीन इमारत के आगे अब जहां महारानी विक्टोरिया की मूर्ति रखी हुई है, वहां काले पत्थर का एक विशालकाय हाथी खड़ा था, जिसे जयमल फत्ते का हाथी कहकर बूढ़े आदमी उस पटरी पर वृक्षों की ठंडी छाया में लेटे उनींदी आंखों में खमीरी

तम्बाखू का मद भरे भांति-भांति के किस्से-कहानी कहा करते थे। दिल्ली के निवासियों की बोली में एक अजीब लोच था। खोंचे वालों की आवाज़ें भी एक से एक बढ़कर होती थीं। सब्ज़ी-तरकारियों में जो पहले चलती, वही दिल्ली के रईस खाते थे। भिंडी और करेले जब तक रुपये सेर बिकते थे, कच्ची आम की कैरियां जब तक बारह आने सेर बिकती थीं, तभी तक वे दिल्ली वालों के खाने की चीज़ समझी जाती थीं। सस्ती होने पर उन्हें कोई नहीं पूछता था। बेर के मौसम में लोग बेरों को चाकू से छीलकर उनपर चांदी का वर्क लपेटकर खाते थे। लताफत और नजाकत हर-एक बात में थी। जैसे वे महीन आदमी थे, वैसे ही उनका रहन-सहन भी था।

फागुन लग गया था। वसन्त पुज चुका था। सर्दी कम हो गई थी। वासन्ती हवा मन को हरा कर रही थी। बाज़ार में नर्म-नर्म पतली ककड़ियों के कूजे बिकने आने लगे थे। पर उनके दाम काफी महंगे थे इसलिए यह रईसों का ककड़ी खाने का मौसम था। एक जवान कुंजड़ा सिर पर नारंगी साफा बेपरवाही से बांधे, बदन पर तंजेब का ढीला कुरता पहने, गले में सोने की छोटी-सी तावीज काले डोरे में लटकाए, आंखों में सुरमा और मुंह में पानों की गिलौरियां दबाए कमर में चौखाने का तहमत और पैर में फूलदार सलेमशाही आधी छटांक का जूता पहने ककड़ियां बेचता पटरी पर मस्तानी अदा से घूम रहा था। उसके हाथ में झाऊ की एक सूफियानी चौड़ी टोकरी थी। उसपर केले के हरे पत्तों पर गुलाब के फूलों के बीच ककड़ी के दो रवे रखे थे। टोकरी उसके दाहिने हाथ में अधर धरी थी। वह अपनी मस्त आंखों से इधर-उधर घूरता झूमती-झूमती ललकती भाषा में आवाज़ लगाता था—नाज़ुक ये ककड़ियां ले लो··· लैला की उंगलियां ले लो···मजनूं की पसलियां ले लो। नाज़ुक ये ककड़ियां ले लो।

पीछे से आवाज़ आई – ककड़ी वाले, ज़रा वरे को आना। उसी भांति मस्तानी अदा से पुकारता हुआ ककडी वाला पीछे को फिरा। पुकारने वाला कहार था। वह एक बुड्ढा आदमी था। उसकी सफेद-सफेद बड़ी मूंछें, पक्का रंग, लट्ठे की मिर्ज़ई, दुपल्ली टोपी और चौखाने का अंगोछा कंधे पर पड़ा हुआ था।

ककड़ियों को देखकर उसने कहा—सिर्फ दो ही रवे हैं?

"अभी ककड़ियां कहां? वह तो कहो, मैं चार रवे लाया था। दो बिक गए, दो ये हैं। लेना हो तो लो, मोलभाव का काम नहीं, चवन्नी लूंगा।"

बूढ़ा कहार अभी नहीं बोला था। एक युवक ने तीव्र आवाज़ में कहा—अठन्नी लो जी, ककड़ियां हमें दो।

पहलवान युवक भी कहार था। उसकी मसें अभी भीगी थीं। भुज-दण्डों में मछलियां उभर रही थीं। उसने हेरती हुई आंखों से बूढ़े कहार की ओर देखा और अठन्नी टन से झाबे में फेंक दी।

"सौदा हमसे हुआ है जी, ककड़ियां हम लेंगे। यह लो एक रुपया। ककड़ियां हमें दो।"

कुंजड़ा क्षणभर-स्तम्भित रहा। उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से युवक की ओर देखा। युवक ने कहा—कुछ परवाह नहीं, हम दो रुपये देंगे।

"हम पांच रुपये देते हैं।"

"हम दस देते हैं।"

"यह लो बीस रुपये। ककड़ी तो हम खरीद चुके।"

"पच्चीस हैं ये, ककड़ी हमने ले लीं।"

"हमने तीस दिए।"

युवक के माथे पर बल पड़ गए। उसने कहा—हम पचास में खरीदते हैं। लाओ ककड़ियां इधर दो।

बूढ़े कहार ने हंस दिया और आज्ञा की दृष्टि से युवक की ओर देखकर ज़रा सीधा खड़ा होकर उसने तेज़ स्वर में कहा—मैंने सौ रुपये में दोनों ककड़ियां खरीद लीं।

युवक कहार क्षणभर घबराई दृष्टि से बूढ़े की ओर देखता रहा। बूढ़े ने विजयगर्वित दृष्टि से उसे घूरते हुए कहा—दम हो तो बढ़ो आगे। ककड़ियां पांच हज़ार तक मेरे यहां जाएंगी।

सैकड़ों आदमी इकट्ठे हो गए थे। युवक लज्जा और क्रोध से भरकर चुपचाप चल दिया। सैकड़ों कण्ठों से नारा बुलन्द हुआ—वाह भई, महरा, क्यों न हो? आखिर तू है किस घराने का नौकर, जो इस समय दिल्ली की नाक है। शाबाश!

बूढ़े ने कमर से रुपये खोलकर गिन दिए। ककड़ियां लीं और इस भांति अपने मालिक के घर को चला, जैसे वह एक राज्य विजय कर लाया हो।

बूढ़े ने अपने मालिक लाला जगत्नारायणजी के सामने जाकर फूलों और केले के पत्तों में लिपटी हुई ककड़ियां रख दीं। शाम हो चली थी।

लालाजी ने पूछा—क्या दो ही मिलीं?

"जी हां, बाज़ार भर में दो ही ककड़ियां थीं। जिन्हें आपका सेवक सौ रुपये में खरीद लाया है।"

इसके बाद कहार ने जो घटना बाज़ार में घटी थी, सब कह सुनाई।

लाला ने सब सुना। क्षणभर वे स्तम्भित रहे। क्षणभर बाद उन्होंने अपने गले से सोने का तोड़ा उतारकर बूढ़े के गले में डाल दिया और उसके बदन को दुशाले में लपेटकर स्वयं भी उससे लिपट गए। उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। उन्होंने गद्गद कण्ठ से कहा—शाबाश मेरे प्यारे रामदीन, तुमने बाज़ार में मेरी प्रतिष्ठा बचा ली। इसके बाद उन्होंने चांदी की तश्तरी में ककड़ियों को उन्हीं गुलाब के फूलों में रखकर ऊपर कमख्वाब का रूमाल ढांककर कहा—जाओ, लाला शिवप्रसाद जी से मेरा जयगोपाल कहना, और कहना कि आपके सेवक ने यह प्रेम की सौगात भेजी है और हाथ जोड़कर अर्ज की है कि स्वीकार करके इज़्ज़त अफज़ाई करें।

युवक से सब घटना सुनकर शिवप्रसादजी चुपचाप मसनद पर लुढ़क गए। मुंह की गिलौरी उन्होंने थूक दी। नौकर-चाकर चिन्तित हुए। पर कोई कुछ नहीं कह सकता था। थोड़ी ही देर में बूढ़े रामदीन ने आकर अदब से आगे बढ़कर तश्तरी लाला शिवप्रसादजी के सामने रख दी और हाथ जोड़कर अपने मालिक का सन्देश भी निवेदन कर दिया। लाला शिवप्रसाद जी चुपचाप एकटक तश्तरी में रखी दोनों ककड़ियों को देखते रहे। कुछ देर बाद उन्होंने ककड़ियां भीतर भिजवा दीं और तश्तरी अशर्फियों से भरकर कहा—यह तुम्हारा इनाम है। लाला जगतनारायणजी से हमारा जयगोपाल कहना।

बूढ़े रामदीन ने झुककर सलाम किया और चला आया।

दूसरे दिन सूर्योदय के साथ ही सारे शहर में खबर फैल गई कि नगर के प्रसिद्ध रईस लाला शिवप्रसादजी ने जहर खाकर जान दे दी। वे एक पुर्ज़े पर यह लिखकर रख गए कि बाज़ार में मेरी इज़्ज़त किरकिरी हो गई। अब मैं दुनिया में मुंह नहीं दिखा सकता।

ऊपर जिन दो प्रतिष्ठित रईसों के नाम दिए गए हैं, वे काल्पनिक हैं। आज भी ये दोनों घराने दिल्ली में उसी भांति प्रतिष्ठित हैं। हां, जिनका नाम जगत्नारायण कल्पित किया गया है, उनके घर से लक्ष्मी रूठ गई है। आज वह विशाल हवेली टूट-फूटकर खण्डहर हो गई है। उसमें जो एकाध कमरा बचा है उसमें उनके उत्तराधिकारी बड़े कष्ट से काल-यापन करते हैं। नीचे के खण्ड के खण्डहरों में छोटे दर्जे के किराएदार रहते हैं, जिनकी आमदनी पर ही उनका निर्वाह निर्भर है।

कहानी खत्म हो गई

एक असहाय विधवा के पतन की दर्दनाक कथा, जिसे नीचे धकेलने में समाज ने चेष्टा की परन्तु पाप और अपराध की गठरी उसीके सिर बंधी।

•

चाय आने में देर हो रही थी। और मेरा मिज़ाज गर्म होता जा रहा था। आप तो जानते ही हैं, मैं इन्तज़ार का आदी नहीं। फिर, चाय का इन्तज़ार।

मेजर वर्मा ने यह बात भांप ली, उन्होंने एक हिट दिया। बोले—चौधरी, उस औरत का सिर क्या हुआ?

क्षण भर के लिए चाय पर से मेरा ध्यान हट गया, एक सिहरन-सी सारे शरीर में दौड़ गई, जैसे बिजली का तार छू गया हो। मैंने चौंककर मेजर की ओर देखा। पर जवाब देते न बना, बात मुंह से न फूटी। अजीब-बेचैनी मैं महसूस करने लगा।

लेकिन मेजर वर्मा जैसे अपने प्रश्न का उत्तर लेने पर तुले हुए थे। वे एकटक मेरी ओर देख रहे थे। प्रश्न का मेरे ऊपर जो असर हुआ था, उसे मित्रमण्डली ने भी भांप लिया। वे लोग अपनी गपशप में लगे थे, पर विंग कमाण्डर भारद्वाज ने हसकर कहा—कौन औरत भई, उसमें हमारा भी शेअर है।

भारद्वाज की हंसी में न मैंने साथ दिया न मेजर वर्मा ने। वर्मा की उत्सुकता उनकी आंखों से प्रकट हो रही थी। मैं उनकी आंखों से आंख न मिला सका। आप ही मेरी आंखें नीचे को झुक गईं। मैंने धीरे से कहा—मर गई।

मेजर को छाती में जैसे किसीने घूंसा मारा। उन्होंने एकदम कुर्सी से उछलकर कहा—अरे, कब?

'कल सुबह"—मैंने धीरे से कहा।

मित्र-मण्डली की गपशप एकदम बन्द हो गई। वे सब मेरी ओर देखने लगे। वातावरण एकदम गम्भीर हो गया। मेरे चेहरे पर जो वेदना की रेखाएं उभर आई थीं, उन्होंने सभी को अभिभूत कर दिया। सबसे अधिक फील किया मिसेज़ शुक्ला ने। उन्होंने मेरी ओर खिसककर अपने नंगे कंधे

मेरे कंधों से छुआ दिए, फिर धीरे से पूछा—कौन थी ?

"थी एक," एक गहरी सांस लेकर मैंने कहा।

"क्या बीमार थी ?"

"बीमार कोई और था, लेकिन मर गई वह।" मेरा जवाब असाधारण था, और मैं एकाएक उत्तेजित और असंयत हो उठा था। मेजर भी जैसे मेरे जवाब से जड़ बन गए थे। इसीसे इस औरत के सम्बन्ध में सभी की जिज्ञासा जाग गई।

वेटर कब चाय रख गया, इसका ज्ञान भी हममें से किसीको नहीं हुआ। भारद्वाज ने कहा—यह तो बहुत ही सीरियस केस मालूम पड़ता है।

मेजर वर्मा ने बीच ही में बात पकड़ ली। उन्होंने कहा—सीरियस होने में क्या शक है। लेकिन हुआ क्या ?

"क्या पूरा ही किस्सा सुना दूं ?" मैंने कुछ दर्द भरे स्वर में कहा। मेरे कहने का ढंग शायद कुछ प्रभावशाली था। सभी मेरे मुंह की ओर देखने लगे। भारद्वाज ने कहा—ज़रूर-ज़रूर। पूरा ही किस्सा सुनाइए।

मिसेज़ शर्मा ने चा' का प्याला तैयार किया, मेरी ओर बढ़ाया, कहा—लीजिए, एक सिप लीजिए।

मैंने दो सिप लिए और प्याला एक ओर टेबुल पर रख दिया। फिर मैंने कहा—आप लोग समझते होंगे, ज़्यादातर ट्रेजेडी शहरों में होती है, क्योंकि वहां संघर्ष है, दिमाग है, कानून है, रुपया है, शान है।

सब चुपचाप सुनते रहे। मैं आगे क्या कहना चाहता हूं, इसी पर सब का ध्यान केन्द्रित था। मैंने कहा—लेकिन हमारे देहातों में भी कभी ऐसी ट्रेजेडी हो जाती है जो मनुष्यता और सभ्यता को एक करारा चैलेंज देती है। वहां रुपया नहीं है, दिमाग नहीं है, कानून नहीं है, शान नहीं है, केवल दिल है।

कमाण्डर भारद्वाज उछल पड़े। ज़ोर-ज़ोर से बोले—अरे यार, तो यह कोई दिलवाला मामला है। तब मैं ज़रूर सुनूंगा। उन्होंने सिगरेट का एक गहरा कश लिया। भारद्वाज का यह गुण्डा जैसा टोन मुझे पसन्द न आया। वास्तव में मेरा मूड कुछ दूसरा ही था—मैंने एक व्यंग्यवाण छोड़ा, कहा—क्यों नहीं, आप दिलफेंक जो ठहरे। पर यह कहानी दिलवालों की है।

भारद्वाज उतर गए। पर झेंप की हंसी हंसते हुए बोले—सुनाओ यार, यहां दिलवाले भी बैठे हैं।

और एक सिप चा' का लिया। फिर मेजर वर्मा की ओर मुखातिब होकर कहा—आपने तो उसे पुलिस की हिरासत में ही देखा था न ?

मेजर ने कहा—जी हां, ओह, उस दिल हिला देने वाले वाकए को तो मैं ज़िन्दगी भर भूल नहीं सकता। खासकर वह घटना जब पुलिस के अफसर ने तरबूज़ की मिसाल देकर वह झोला मेरे सामने उलट दिया था। तोबा-तोबा ! !

मिसेज़ शर्मा एकदम बौखला उठीं, बोलीं—अजी, पहेली न बुझाइए, किस्सा सुनाइए। हुआ क्या ?

मेजर की आंखें भय से फटी-फटी हो रही थीं। जैसे अभी भी वे उस झोले से बाहर हुई चीज़ को देख रहे थे। मैंने उन्हींको लक्ष्य कर कहा—उस वक्त तक भी पूरा किस्सा मुझे मालूम न था, सारी बातें तो पीछे मुझे मालूम हुईं। पर तब तो वह मर ही चुकी थी। अपने पर शर्मिन्दा होने और अफसोस करने के अलावा हम कर ही क्या सकते थे ?

बहुत देर तक मेरे मुंह से बात न फूटी। कितनी ही बातें—कल्पना और सत्य की—मेरे मानस-नेत्रों में नाच उठीं, सच पूछिए तो मैं अभी तक उस घटना से मर्माहत न था, अभी—एक दिन पहले ही की घटना थी। घाव ताज़ा था। इस क्षण उसकी वे आंखें, आंखों की वह वेदना, निराशा और सारी ही मानव-सभ्यता को धिक्कार का सन्देश, जो मृत्यु के समय उसके निस्पन्द होंठ दे रहे थे, मेरे नेत्रों में आ खड़े हुए। मेरा कण्ठ रुक गया।

मिसेज़ शर्मा बहुत विचलित हो गईं। उन्होंने कहा—जाने दीजिए, यदि आपको वह किस्सा सुनाने में तकलीफ हो रही है तो मत कहिए। आप चा' लीजिए। उन्होंने एक ताज़ा प्याला तैयार कर मेरे आगे बढ़ाया। उनकी उंगलियां कांप रही थीं और उद्वेग तथा भावावेश से उनका हृदय आन्दोलित हो रहा है, यह स्पष्ट दीख पड़ता था।

प्याले की ओर मैंने आंख उठाकर भी न देखा और मैंने किस्सा कहना शुरू किया—

वह हमारे ही गांव की लड़की थी। उसका बाप हमारी ज़मींदारी में सर्वराहकार था। बूढ़ा और भला आदमी था। हमारा ग्रामीण जीवन शहर के जीवन से सर्वथा भिन्न होता है। आप कदाचित् उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। गांव में हम सब छोटे-बड़े, ऊंच-नीच एक पारिवारिक भावना से रहते हैं। न जाने कब से—सम्भवतः आदियुग की यह परिवार-भावना हमारे गांवों में अब तक चली आ रही है। सुनते हैं कि प्राचीन काल में, जब नगर नहीं थे, सभ्यता नहीं थी, जीवन अपने ही में केन्द्रित था और मनुष्य जीवन-संघर्ष को सबसे बड़ा मानता था। आदर्शों की,

सभ्यता की, धर्म-मर्यादा की तब तक उत्पत्ति भी न हुई थी, तभी से मनुष्य ने ग्राम-संस्था स्थापित की। सामाजिक जीवन का वह प्रथम अध्याय था। उसीसे मनुष्य ने सामूहिक हितों का सर्जन करके समाज-संस्था की नींव डाली। 'ग्राम' का अर्थ था—समूह। कुछ लोग एकत्र होकर जहां बसते वह ग्राम कहाता था। आवश्यक नहीं था कि यह ग्रामवास स्थायी हो। वह तो चलग्राम था। ग्राम का अर्थ स्थानसूचक न था, समूहसूचक था; अतः उस काल मनुष्यों के ग्राम जीवन-यापन के संघर्ष से प्रताड़ित घूमा करते थे—यहां से वहां, वहां से यहां। परिस्थितियों ने उनमें सामूहिक हितों की सृष्टि कर दी। सुख-दुःख, लाभ-हानि सभी में उनके स्वार्थ एकत्र हो गए और एक ग्राम-समूह एक परिवार की भांति रहने लगा। इस परिवार में जाति-भेद को स्थान न था। सब वृद्ध पितृतुल्य थे, सब वृद्धाएं माता, और सब युवक-युवतियां परस्पर भाई-बहिन। उनका सबका एक ग्राम था, एक गोत्र था। गोत्र का अर्थ था चरागाह, जहां उनके पशु चरते थे। एक ग्राम का परिचय दूसरे ग्राम के मनुष्यों से इसी ग्राम-गोत्र के द्वारा होता था। उसीके नाम से वह ग्राम-गोत्र प्रसिद्ध होता था।

शताब्दियां बीतीं, सहस्राब्दियां बीतीं। नगर बसे, सभ्यता का विकास हुआ। जीवन के आदर्श बदले, क्रम बदला, समाज बदला, बदलता चला गया।

गांवों में भी यह परिवर्तन पहुंचा। सहस्राब्दियों के प्रभाव से गांव भला अछूते कैसे रह सकते थे! अब 'गांव' स्थान के अर्थ में था—समूह के अर्थ में नहीं अब लोगों की बस्ती को गांव कहते थे। समाज में अनेक जातियां हो गई थीं। गंगो गांव में भी अनेक जातियां बसती थीं; हिन्दू थे, मुसलमान थे। हिन्दुओं में भी ब्राह्मण थे, क्षत्रिय थे, जाट थे, अहीर थे, भंगी थे, चमार थे, धोबी थे, नाई थे। समाज की व्यवस्था के अनुसार वे अपना-अपना काम करते थे। गांवों में किसानों की ही बस्ती अधिक होती है। जो लोग किसान और किसानों के उपजीवी नहीं होते वे शहर में, कस्बों में बसते हैं उनकी वहां सम्पत्ति भी है। जमींदार हैं, किसान हैं, उनके खेत हैं, घरबार है। किसीके कम, किसीके अधिक। कोई रईस है, कोई अमीर। इस प्रकार समाज के संगठन का, व्यवस्था का, राजसत्ता का, कानून का, धर्म का—सभी का युगवर्ती प्रभाव गांवों पर पड़ा। उससे उनमें परिवर्तन भी आया है, पर एक प्राचीनतम बात अभी तक गांवों में चली आ रही है। वह है परिवारभावना। गांव की बूढ़ी भंगन को भी ब्राह्मण की पतोहू सास कहकर पांव पड़ती है। गांव की प्रत्येक लड़की गांव के प्रत्येक लड़के की बहिन और प्रत्येक प्रौढ़ की लड़की है। गांव में सब

छोटे-बड़ों का सम्बन्ध—चाचा, ताऊ, भाई, भतीजा, देवर, भाभी, काका, ताई आदि पारिवारिक सम्बन्ध हैं। यहां तक कि गांव की लड़की जिस दूसरे गांव में ब्याही जाती है, उस गांव का पानी भी न पीने वाले वृद्ध पुरुष अब भी गांवों में जीवित हैं। यह है हमारे गांवों की परिवार-परम्परा—शताब्दियों, सहस्राब्दियों से चली आती हुई।

हां, तो मैं उस लड़की की बात कह रहा था। वह हमारे गांव की लड़की थी, और हमारी ज़मींदारी के सर्वराहदार की बेटी थी। हमारा घर ज़मींदार का घर था। गांव के सारे ही स्त्री-पुरुष हमारी रैयत थे। वे हमारे घर आते-जाते रहते थे—स्त्रियां भी पुरुष भी। काम से भी और बेकाम से भी। बाहर पिताजी का दीवानखाना और भीतर ज़नाने में माताजी का कमरा आने-जाने वाले स्त्री-पुरुष से भरा ही रहता था। हवेली हमारी बहुत भारी थी। सत्तावन के गदर में अंग्रेज़ सरकार ने हमारे दादा को इक्कीस गांव इनाम दिए थे और तभी हमारे दादा ने अपनी हवेली के लिए इतनी जगह घेर ली थी कि उसमें आधा गांव समा जाता था। सस्ते का ज़माना था। राज, बढ़ई उन दिनों दो-ढाई आना रोज़ मज़दूरी लेते, मज़दूर एक आना। बड़े-बड़े महराब, मोटी-मोटी दीवारें, लम्बे-लम्बे दालान भी आज भला बन सकते हैं? अब तो हम उनकी मरम्मत भी नहीं कर सकते। हवेली वीरान होती जा रही है। अब तो न हाथी, न घोड़े, न रथ, न बहली। इनके सब थान वीरान पड़े हैं। अब तो सिर्फ यह मोटर है और हम हैं।

मैं असल बात से दूर होकर बहकता जा रहा था। भीतर मेरे रक्त में एक गर्मी-सी आ रही थी। और जोश में ये सब बातें मैं कहे जा रहा था—एकाएक मुझे ध्यान आया। असल मुद्दे की बात तो पीछे ही रह गई।

परन्तु सब सन्नाटा बांधे सुन रहे थे। सब जैसे किसी अतीत उदार-चित्त वातावरण में पहुंच चुके थे। मैंने ज़रा रुककर कहना शुरू किया—

उन दिनों मैं कालेज में ला का फाइनल दे रहा था। दशहरे की छुट्टियों में जब मैं घर आया तो पहली बार उसे देखा—'देखा' कहना ठीक न होगा। मुझे कहना चाहिए : पहली बार मेरा ध्यान उसकी ओर गया। इससे पहले बहुत बार देख चुका था—रूखे-बिखरे बाल, मैला मोटा ओढ़ना, पुराना घाघरा, नंगे धूलभरे पैर, पर रंग गोरा। लेकिन गांव में ऐसी बहुत लड़कियां थीं—राह-बाट में, खेत में बहुधा मिल जाती थीं। मैं तो ज़मींदार का लड़का था। शहर में पढ़ता था। सूट-बूट पहनकर ठसक से गांव में निकलता था। सो किसी लड़की-लड़के की क्या मजाल जो मुझसे

बात करे। मुझे देखते ही वे सहमकर पीछे हट जाते थे। जो समझदार होते थे वे सलाम करते थे। सयानी लड़कियां ओट में छिप जाती थीं, छोटी कौतुक से मुझे देखती थीं। इसीसे इस लड़की पर भी पहले कभी मेरा ध्यान नहीं गया।

पर इस बार की बात जुदा थी। मैं घर कोई डेढ़ साल में आया था। पिछली गर्मी की छुट्टियों में यूनिवर्सिटी की टीम कश्मीर चली गई थी। मैं भी उसमें चला गया था, अतः छुट्टियों में घर नहीं आया था। घर में दशहरे की सफाई-सजावट की धूम-धाम थी। भाभियां घर सजाने में व्यस्त थीं और वह उनकी सहायता कर रही थी। अब उसके बाल बिखरे न थे। ठीक-ठीक बालों की मांग निकली थी, कपड़े सलीके के शहरी ढग के बारीक और बढिया थे। स्वस्थ तारुण्य उसकी एड़ियों में झांक रहा था। जीवन की ताज़गी से वह लहलहा रही थी। जीवन में पहली बार किसी लड़की को मैंने ऐसी रुचि से देखा था। उसका चेहरा गुलाब के समान रंगीन और आंखें तारों के समान चमकीली थीं। वह हसती नहीं थी—फूल बखेरती थी, चलती न थी—धरती को डगमग करती थी। मैं क्या कहूं? मुझे एक ही क्षण में ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे दस-पांच अगीठियां मेरे अंग में धधक रही हैं और मैं तपकर लाल हो रहा हूं। आग की लपटें मेरी आंखों से निकलने लगीं और मैं वहां से लड़खड़ाता हुआ ऊपर कमरे में आकर औंधे मुंह पलंग पर पड़ रहा। मैंने समझा—मुझे बुखार चढ़ गया है।

इतना कहकर मैं ज़रा चुप हुआ। बीते हुए दिन एक-एक करके नेत्रों में आने लगे। लेकिन कमाण्डर भार्गव बेचैन हो रहे थे। उन्होंने इत्मीनान से कुर्सी पर आसन जमाते हुए कहा—कहे जाओ, कहे जाओ दोस्त; मामला ठण्डा मत होने दो। उन्होंने नई सिगरेट सुलगाई।

मैंने आगे कहना आरम्भ किया—

वह मुझे देखकर लजाई थी, मुस्कराई थी, भाभी की ओट में छिप गई थी, छिपकर उसने फिर मुझे देखा था। वह सब—देखना, मुस्कराना, छिपना, लजाना, अब सिनेमा की तस्वीर की भांति अनेक बार, सौ बार, हज़ार बार तेज़ी-से मेरी आंखों में घूम रहा था। धरती-आसमान भी सब घूम रहे थे।

बहुत देर तक मेरी यही हालत रही। पर फिर मुझे ज़रा-सी नींद आ गई। जगने पर मेरा मन कुछ शान्त था। मुझमें समझ आ गई थी। अभी हृदय मेरा कोरा था, तारुण्य मेरा निर्दोष था। इस प्रथम विकार पर मुझे लज्जा आई। मुझे लगा; यह खराब बात है। गांव की सभी बहू-बेटियां मेरी बहनें हैं। पिताजी ने कई बार यह कहा है: हम ज़मींदार हैं, इससे और भी

हमारा गौरव बढ़ जाता है। मुझे ऐसा न सोचना चाहिए। यह मेरी प्रतिष्ठा-मर्यादा के सर्वथा विपरीत है। मैं मन ही मन अपने को धिक्कारने लगा। और एकबारगी ही उसे मन से निकाल फेंका।

लेकिन कहां ? पलंग से उठते ही मैं खिड़की में आ खड़ा हुआ, और नीचे आंगन में चारों ओर देखने लगा। जैसे कुछ खो गया है। किसे भला ? यह मैंने अपने मन से पूछा। और जब मन ने कहा—'उसीको' तो मैं अपने पर बहुत झुंझलाया। वैसे ही कमीज़ पहने मैं नीचे उतरा और सीधा बाग की तरफ चल दिया। देर तक बाग में और नहर की पटरी पर फिरता रहा। माली से बातें कीं। मुझे प्रसन्नता हुई कि वह तूफान खत्म हो गया। अब उसकी कभी याद न करूंगा। वाहियात बात पर रात को बहुत देर तक नींद न आई। उसका वह मुस्कराना, लजाकर भाभी की ओट में छिपकर देखना ! वाहियात ! वाहियात ! ये सब खुराफात, गन्दी बातें हैं। भला इनसे मुझे क्या सरोकर !

लेकिन नींद नहीं आ रही थी। मैंने एक मोटी-सी कानून की किताब उठा ली, और एक कठिन कानूनी नुक्ते पर कुछ रूलिंग्स पढ़ने लगा। लेकिन वहां तो प्रत्येक अक्षर की ओट से वह झांक रही थी। मुस्करा रही थी। धुत् !

भारद्वाज ज़ोर-से हंस पड़े।

मैंने कहा—ठीक है, आप हंस सकते हैं। मेरे दुश्चरित्र और दुराचार का यह प्रमाण जो आपको मिल गया ! !

मैं चुप हो गया। और मैंने आंखें बंद कर लीं। लेकिन वही तरबूज़ ! ! एक प्रकार से मैं चीख उठा—

मेजर वर्मा ने कहा—रहने दीजिए। बाकी कहानी फिर कभी सुन ली जाएगी। अभी आपकी तबीयत दुरुस्त नहीं है। लेकिन मैंने कहना आरम्भ कर दिया—

दूसरे दिन मैंने उसे नहीं देखा। यह नहीं कह सकता कि देखना नहीं चाहा। पर मैंने अपने मन को रोकने में कोई कोर-कसर नहीं रखी। पर बेकार। उसकी छिपी हुई नज़रें झांकती ही रहीं। उसके होंठ मुस्कराते ही रहे। मैंने सुना : उसकी सगाई हो गई है, और इसी साहलग में उसका ब्याह होगा।

दशहरे के दिन मेरा तिलक चढ़ा। बहुत धूमधाम हुई। गाजे-बाजे, जशन-दावत, कहां तक कहूं। पिता का सबसे छोटा बेटा था। वे सबसे

अधिक मुझको प्यार करते थे। भीड़-भाड़ में एक होकर मैंने देखा, हर बार मुझे प्रतीत हुआ : वह मुझको देख रही है।

छुट्टियां समाप्त होने पर मैं होस्टल में लौट आया। धीरे-धीरे वह उन्माद बीत गया। स्मृति अवश्य बनी रही, वह भी धुंधली होते-होते छिप गई। अगले वर्ष मेरी शादी हुई। सुषमा ने आकर मेरे जीवन को एक नया मोड़ दिया। सुषमा जैसी पत्नी पाकर मैं कृतार्थ हो गया। वह जैसी सुशिक्षिता है, वैसी ही शीलवती, परिश्रमी और हंसमुख स्वभाव की है। उसके प्रेम, सेवा और विनय से मैं उसमें लीन हो गया। उस लड़की की याद करके और अपनी हिमाकत का विचार करके कभी-कभी मुझे हंसी आ जाती थी—पर कभी मैंने किसीसे अपने मन का यह कलुष कहा नहीं। परीक्षा पास करके मैं घर पर रहकर ज़मींदारी की देखभाल करने लगा। खेती और बागबानी का मुझे शौक था। उसमें मैंने मन लगाया। बड़े भाई डिप्टी-कलक्टर होकर बिहार चले गए थे। पिताजी का स्वर्गवास हो गया। मंझले भाई भी केन्द्र के शिक्षा-विभाग में अण्डर सेक्रेटरी हो गए। घर पर केवल मैं अकेला रह गया। दिन बीतते चले गए। तीन बरस बीत गए। और ईश्वर की कृपा से सुषमा की कोख भरी। मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा।

एक दिन बूढ़े सर्बराहकार रोते हुए मेरे पास आए। चौधारे आंसू बहाते हुए उन्होंने कहा—बर्बाद हो गया, छोटे सरकार! लुट गया! लड़की मेरी विधवा हो गई, उसकी तकदीर फूट गई। मेरी इकलौती बेटी थी सरकार, उसे बेटा बनाकर पाला था। उसपर यह गाज गिरी।

बूढ़ा बहुत देर तक रोता रहा। यद्यपि वे सब बातें मैं भूल चुका था पर स्मृति के चिह्न तो बाकी ही थे। सुनकर मुझे दुःख हुआ। बूढ़े को तसल्ली दी। और जब वह चला गया, एक बूंद आंसू मेरी आंख से भी टपक पड़ा। वाहियात बात थी। लेकिन मन का कच्चा तो सदा से हूं। मेरा मन द्रवित हो गया। बूढ़े ने कहा था कि वह उसे यहां ले आया है; तब एक बार उसे देखने की भी लालसा हो गई। पर वह सब बात मन की थी—मन में रही। महीनों बीत गए। कभी-कभी उसका ध्यान आता, दया आती, पर कुछ विशेष आकर्षण न था। सुषमा धीरे-धीरे कमजोर और पीली पड़ती जा रही थी। मुझे उसकी चिन्ता थी। ज्यों-ज्यों डिलीवरी का समय निकट आ रहा था, मेरी उद्विग्नता बढ़ती जाती थी—इन सब कारणों से मैं उस बिचारी विधवा को भूल ही गया। सुषमा के प्यार ने मुझे अभिभूत कर लिया था। सुषमा मेरे जीवन का आधार थी, और अब मैं इस प्रकार के

विचारों को भी मन में रखना पाप समझता था। मुझे पाकर सुषमा भी खुश थी। वह देवता की भांति मेरी पूजा करती थी।

मिसेज़ शर्मा एकदम द्रवित हो उठीं। उन्होंने कहा—भई बन्द करो। आप सचमुच देवता हैं। आप जैसा पति पाने के कारण मैं तो सुषमा बहिन से ईर्ष्या करती हूं।

मैं जैसे चीख पड़ा। मेरे गले की नसें तन गईं और मुट्ठियां भिच गईं। मैंने कहा—श्रीमतीजी, जल्दी अपनी राय कायम न कीजिए, पूरी कहानी सुन लीजिए।

मेरी वहशत और भावभंगी देख मिसेज़ शर्मा डर गईं। वे फटी-फटी आंखों से मेरी ओर टुकुर-टुकुर देखने लगीं। मैं इस योग्य न था कि इस समय उनसे अपने अशिष्ट व्यवहार के लिए क्षमा मांगूं। मैंने कहानी आगे बढ़ाई—

एक दिन देखता क्या हूं कि वह सुषमा के पास बैठी है। इस समय वह यौवन से भरपूर थी। उस समय यदि वह खिलती कली थी तो आज पूर्ण विकसित पुष्प। परिधान उसका साधारण था। पर स्वच्छता और सलीका—जो बहुधा देहात में नहीं देखा जाता—उसकी हर अदा से प्रकट होता था। उसका रंग अब ज़रा और निखर गया था, अंग भर गए थे और रूप की दुपहरी उसपर चढ़ी थी। अथवा एक ही शब्द में कहूं तो वह इस समय बसन्त की फुलवारी हो रही थी। एकाएक मैंने उसे पहचाना नहीं, पर दूसरे ही क्षण जब उसने उठकर हाथ जोड़कर मुस्कराकर मुझे प्रणाम किया, मैंने उसे पहचान लिया। हाय री तकदीर! वही मुस्कराहट, वही चितवन है। क्षणभर को मेरे शरीर में रक्त की गति रुक गई और मेरे पैर कांपने लगे। साहस करके मैंने पूछा, "अच्छी हो" तो उसने लाज से सिर झुकाकर सिर्फ 'जी' कह दिया।

छी छी! फिर वे भूली हुई बातें न जाने कहां से जीवित हो उठीं। वही मुस्कराना, छिपना और आंखें···मैं तेज़ी से भाग आया। सीधा ऊपर जा दरवाज़ा बन्दकर अपने शयनागार में आ पड़ा। एक आहत हिरन की भांति—जिसे अभी-अभी शिकारी ने तीर मारा हो।

उस दिन मैंने खाना नहीं खाया। सिरदर्द का बहाना करके पड़ा रहा। सुषमा की परेशानी ने मुझे और भी पागल बना दिया। कभी यूडीक्लोन सिर पर डालती, कभी नर्म-गर्म हथेलियों से सिर दबाती, कभी बाल सहलाती, कभी डाक्टर बुलाने का आग्रह करती। मुझ बेईमान, पाखण्डी, मक्कार के लिए वह उस एक ही दिन में आधी रह गई।

मैंने जलती हुई आंखों से मिसेज़ शर्मा की ओर देखा और कहा—

कहिए, कहिए, अब भी आपको सुषमा पर ईर्ष्या होती है, परन्तु अभी ज़रा और ठहर जाइए ! !

एकाएक मेरी आवाज़ मुर्दे की जैसी मरी हुई हो गई। खूब जोर लगाकर मैं कहने लगा—

दूसरे दिन सुबह होते ही मैं जमींदारी के ज़रूरी काम का बहाना करके इलाके पर चला गया। 6-7 दिन तक मैं घर नहीं लौटा। आप दाद दीजिए मेरे जानवरपन की, जब कि सुषमा की यह हालत थी, इस कदर नाज़ुक; कोई उसे देखने वाला न था। पहली ही डिलीवरी थी उसे, और नफ्स का गुलाम कहां, किस हालत में फिर रहा था। मैं आपसे नहीं छिपाना चाहता कि मुझे न खाना भाता था, न नींद आती थी; न दिन चैन पड़ता था, न रात को कल पड़ती थी। वही शैतान आंखें, वही मुंह छिपाकर मुस्कराना, वही गहरे गुलाबी गाल, कम्बख्त न जाने कहां से उभरे चले आते थे, मेरी बदनसीब नज़रों में ? जैसे मेरे रक्त की प्रत्येक बूंद में उन आंखों का खेत उग आया था। उस चितवन की, उस मुस्कान की रिमझिम बरसात हो रही थी। जी हां, एक क्षण को भी मैं उसे न भूल सका, एक क्षण को भी मैंने सुषमा को याद नहीं किया, एक क्षण को भी मैंने उसकी असहायावस्था पर गौर न किया। अन्त में मैंने अपने-आपको धिक्कारा, मन में पक्का इरादा किया, उस शैतान को मैं गांव से निकाल दूंगा, एक क्षण भी न रहने दूंगा।

सातवें दिन मैं घर लौटा। अभी दहलीज पार करके मैं सुषमा के कमरे में जा ही रहा था कि देखता क्या हूं—सामने से वह आ रही है, मुझे देखकर वह ठिठक रही। निकट आने पर उसने मुस्कराकर और हाथ जोड़कर मुझे नमस्कार किया। फिर वह मुस्कराती हुई ही चली गई। अजी, मुस्कराती हुई नहीं—मेरे मन में छिपी समूची वासना का सांगोपांग विवरण पढ़ती हुई। वह गहरे लाल रंग का लहंगा और उसपर चिलकेदार दुपट्टा पहने हुई थी।

भाड़ में जाए यह ! गुस्से से होंठ चबाता हुआ मैं सुषमा के कमरे में पहुंचा। कल ही से उसे ज्वर था। मुझे देख वह मुस्कराई और मैं उसकी जलती हुई हथेलियों को मुट्ठी में दबाए देर तक चुपचाप बैठा रहा। कुछ बोलने की ताब ही न रही। सुषमा ही बोली। उसने कहा—

"गुमसुम क्यों हो ?"

"कुछ नहीं। बहुत थक गया हूं, बहुत दौड़-धूप करनी पड़ी।"

सुषमा एकदम व्यस्त हो उठी। वह लेटी न रह सकी। उसने अधीर स्वर में कहा—मुंह कैसा सूख गया है ! बिस्तर लगवाती हूं, ज़रा सो रहो।

उसने आवाज़ दी— अरी···, और वह आ खड़ी हुई। मैंने उसकी ओर नहीं देखा। सुषमा ने कहा—ज़रा झटपट यहीं बिस्तर लगा दे। बाबू की तबीयत ठीक नहीं है।

मैंने बहुत ना-नूं की। वहां—सुषमा के सामने मैं अपनी दुर्बलता प्रकट नहीं करना चाहता था। मैंने कहा—नहीं नहीं, ऐसा ही है तो मैं ऊपर अपने कमरे में जा सोऊंगा। मगर तुम आराम करो। तुम्हें ज्वर है।

पर उस साध्वी पतिप्राणा को अपने ज्वर की क्या चिन्ता थी? क्या उसे उस पाखण्डी के मन का ही हाल मालूम था? उसने कहा—तो जा बहिन, ऊपर ही जाकर बिस्तर लगा दे।

मेरा निषेध सुषमा ने माना नहीं। उसे भेज दिया। मैं जड़ बना वहीं बैठा रहा।

वह लौटकर आई। उसी तरह मुस्कराकर उसने कहा—भैयाजी का बिछौना बिछा है।

'भैयाजी', यह शब्द जैसे बन्दूक की गोली की भांति मेरे मस्तिष्क में घुस गया। लेकिन मुझे तो गांव की सभी लड़कियां भैयाजी ही कहती हैं। वही गांव का प्राचीन पारिवारिक सम्बन्ध। परन्तु इस समय तो यह शब्द मेरे मुंह पर एक तमाचा था। मैं वहां न ठहर सका। तेज़ी से उठकर ऊपर अपने कमरे में बिस्तर पर आ पड़ा। कमरे की चटखनी भीतर से चढ़ा ली। क्यों? मैं कह नहीं सकता।

बहुत देर तक मैं सोता रहा। जब उठा तो शाम हो चुकी थी। उठकर मैं सीधा सुषमा के पास जा बैठा। क्षणभर बाद ही वह चा' लेकर आई। चा' टेबुल पर रखकर चली गई। सुषमा जानती थी कि मैं इंतज़ार नहीं कर सकता, खासकर चाय का। पर यह बात क्या यह भी जानती है?

उसके जाने के बाद मैंने सुषमा से कहा—क्या इसे तुमने नौकर रख लिया है?

उसने हंसकर कहा—नहीं, नहीं! बहुत अच्छी लड़की है। मुझे अकेली और बीमार देखा तो आप ही मेरे पास आ गई। तभी घर के काम-काज में जुटी है। तुम्हारे जाने के बाद से रोज़ ही दिन-भर यहीं रहती रही है। कितना सहारा मिला मुझे इससे! तुम्हारे ऊपर जाने के बाद ही मैंने इससे कह दिया था कि तुम चा' का इन्तज़ार नहीं कर सकते। चा' तैयार कर देना। सब बातें मुझसे पूछकर यह न जाने कब से बैठी इन्तज़ार कर रही थी। सुषमा हंस दी। और मैंने मन का उद्वेग छिपाने को एक बिस्कुट समूचा ही मुंह में ठूंस लिया।

अब मेरे जीवन का नया अध्याय आरम्भ होने में देर न थी। मुझे सुषमा शीघ्र ही कुसुम-कोमल पुत्र देगी, जो हम दोनों के प्रेम का जीता-जागता प्रमाण होगा। अब मुझे इस शैतानी विचार को मन में नहीं लाना चाहिए। फिर मेरा अपना चरित्र है, प्रतिष्ठा है, उसका भी तो मुझे ख्याल रखना चाहिए। जैसे मेरे भीतर एक नये बल का संचार हुआ, मेरे ओठों पर हंसी खेल गई, मैंने बड़े आनन्द से चाय का एक प्याला अपने हाथ से बनाकर सुषमा को दिया। सुषमा आनन्द से विभोर हो गई। कुछ तो अपनी अस्वस्थता के कारण—और कुछ मुझे अस्त-व्यस्त देखकर वह बहुत परेशान हो गई थी। अब मेरे हाथ से प्याला लेकर वह खुश हो गई। उसने कहा—अब तो कुछ ही दिनों की बात है। उसकी आंखें हंस रही थीं। और मैं आनन्द-सागर में गोते लगा रहा था। अपनी मूर्खता पर मैं मन ही मन हंसने लगा। चुड़ैल कहीं की। धुत्! धुत्!

सुषमा ने कहा—जाओ, ज़रा घूम आओ, तबीयत ठीक हो जाएगी। खाओगे क्या, मिसरानी से कह दो

मैंने कहा—सुषमा, आज तो मैं तुम्हारे साथ ही खाऊंगा! जो चाहे बनवा लो। लेकिन, उठना नहीं—तुम्हें ज्वर है। ज़रा शरीर का ध्यान रखो।

स्त्रियां कितनी भावुक और कोमल होती हैं। मेरी इतनी ही-सी बात पर सुषमा गद्गद हो गई। और मैं अपने को तीसमारखां समझने लगा था। अपनी समझ में तो मैंने मन का सारा ही मैल धो डाला था। अब तो दिल में कहीं किसी कोने में भी न वह हंसी थी, न चितवन। इसे कहते हैं मार पर विजय। मदनदहन शिव ने इसी भांति किया था। बुद्ध ने भी मार पर इसी भांति विजय पाई थी।

मैं कपड़े बदलकर ज्यों ही सीढ़ियों से उतरा। देखता क्या हूं, वह सुषमा के लिए एक कटोरा दूध लेकर उसके कमरे में जा रही है। मैंने मन में कहा—इसकी ओर देखना ही न चाहिए। मैं आंखें नीची किए दस कदम आगे बढ़ गया। वह भी उसी भांति आंखें नीची किए आगे बढ़ गई। लेकिन न जाने क्यों मैंने ठिठककर मुंह फेरकर उसकी ओर देखा! छी, छी, वह भी मुंह फेरकर मेरी ओर देख रही थी। मुझे उचटकर देखते देख वह चल दी। गुस्से से मेरा शरीर कांपने लगा, और मैं तीर की भांति वहां से बाहर निकल गया। कमाण्डर भारद्वाज ज़ब्त न कर सके। ठठाकर हंस पड़े। बोले—यह गुस्सा किस पर था, उसपर या अपने पर?

क्षण-भर को सभी के चेहरों पर मुस्कान दौड़ गई। पर मिसेज़ शर्मा बहुत गम्भीर थीं। मेरे ऊपर घड़ों पानी गिर गया। मेरी वाणी रुक गई।

बहुत देर तक कोई न बोला।

मेजर वर्मा एकाएक बहुत उत्तेजित हो उठे। वे कुर्सी से उछलकर खड़े हो गए। हाथ की सिगरेट उन्होंने फेंक दी और तेज़ नज़र से मेरी ओर ताकने लगे। मैं समझ गया, मेजर वर्मा कहानी के दूसरे छोर तक पहुंच चुके हैं। और अब उनके मस्तिष्क में वह तरबूज़···

मेरे होंठ नीले पड़ गए, और आंखें पथरा गईं। मैंने एक असहाय मूक पशु की भांति, जिसकी गर्दन पर छुरी चल गई हो, करुण-कातर दृष्टि से मेजर वर्मा की ओर देखा। मिसेज़ शर्मा घबरा गईं। उन्होंने कहा—आपकी तबीयत तो एकदम बहुत खराब हो गई है, चौधरी साहब।

"नहीं, मैं ठीक हूं।" कुछ प्रकृतिस्थ होते हुए मैंने कहा। मेजर वर्मा चुपचाप कुर्सी पर बैठकर मेरी ओर ताकते रहे। मरे हुए स्वर में मैंने कहा—मेजर, सारी बातें मैं न बता सकूंगा। आप और ये सब सज्जन मुझे क्षमा करें।

डिलीवरी की खटपट में मैं फंस गया। सुषमा बहुत बीमार हो गई थी। उसे मंसूरी ले जाना पड़ा। पुत्र-जन्म का उत्सव धूम-धाम, शोर-गुल, बाजे-गाजे से हुआ, ये सब बातें क्या कहूं। 4-5 महीने इन सब बातों को बीत गए।

एक दिन शाम को जब मैं घूमकर लौट रहा था, गांव की जनशून्य राह पर मैंने देखा: चादर में लिपटा हुआ कोई खड़ा है। वही थी, और मेरी ही प्रतीक्षा में खड़ी थी। निकट पहुंचने पर उसने कहा—बड़ी देर से खड़ी हूं ज़रा उधर चलिए—मुझे आपसे कुछ कहना है।

सच पूछिए तो मैं अब उससे सचमुच ही कतराने लगा था। वह नशा तो काफूर हो चुका था, और इधर महीनों से उससे मुलाकात ही नहीं हुई थी। मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी कि मुझे एकान्त में उससे बात करते कोई देख ले। पर मैं उसका अनुरोध न टाल सका। मैंने कहा—क्या बहुत ज़रूरी बात है?

उसकी आंखें भर आईं। उसने धीरे से कहा—जी हां।

और जब हम रास्ते से हटकर उस बड़े बरगद की छांह में गए तब चारों ओर अंधेरा फैल चुका था। उसने एक ही वाक्य में वह बात कह दी। सुनकर मैं ठण्डा पड़ गया। मेरे मुंह से बात न निकली।

बहुत देर वह मेरे उत्तर की प्रतीक्षा करती रही। फिर उसने धीरे से कहा—आपको मैं न किसी झंझट में डालना चाहती हूं, न आप पर मैं कोई

बोझ लादना चाहती हूं। सब कुछ मैं स्वयं भुगत लूंगी। परन्तु पिताजी का देहान्त हो चुका। मेरा अब पृथ्वी पर कोई नहीं है। आप गांव के राजा हैं; रियाया के माई-बाप हैं। मैं और किसी अधिकार की बात नहीं कहती—किसी बदनामी के भय से आप डरें नहीं। मर जाऊंगी, पर आपका नाम न लूंगी। परन्तु, मैं औरत हूं, असहाय हूं। मेरा कोई हमदर्द नहीं, आप ही अब मुझे राह बताइए।

मैं शर्म से गड़ा जा रहा था। समझ रहा था कि वह औरत मुझे कितना कायर समझ रही है। यह कुछ झूठ भी न था। मैंने अंत में कहा—मुझसे तुम क्या चाहती हो ? मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं ? आखिर मैं एक इज़्ज़तदार आदमी हूं। तुम्हें यह सोचना चाहिए।

"सोचकर ही तो कह रही हूं।"

"क्या तुम कुछ रुपया-पैसा चाहती हो ?"

"नहीं।"

"तब क्या चाहती हो ?"

"अपनी इज़्ज़त बचाना। आप राजा रईस हैं, मैं गरीब, अनाथ, विधवा, रांड, स्त्री हूं। जिस परिस्थिति में मैं फंस गई हूं उसके लिए मैं अकेले आपको ज़िम्मेवार नहीं ठहरा सकती। दुर्बलता मेरी भी थी। फिर, मैं तुच्छ स्त्री हूं। सभी भोग मैं ही भोग लूंगी पर इज़्ज़त-आबरू मेरी भी है। मेरे पिता आपके एक ईमानदार सेवक थे। मैं आपके गांव की बेटी हूं, मेरी बदनामी गांव की बदनामी है। वह मैं न होने दूंगी, इसमें आप मेरी मदद कीजिए।

"लेकिन कैसी मदद ? रुपया-पैसा तो तुम चाहती ही नहीं।"

"जी नहीं ?"

"तब मैं क्या करूं ?"

"गांव के किसी इज़्ज़तदार गरीब ठाकुर से मेरा ब्याह करा दीजिए।"

"इज़्ज़तदार ठाकुर क्यों ब्याह करने को राज़ी होगा।"

"आप कहेंगे तो होगा। मेरा सहारा हो जाएगा ? मेरा कलंक ढका रह जाएगा। और मैं अपनी सेवा से उसे प्रसन्न कर लूंगी।"

अब आप मेरे दिल की बात सुन लीजिए। मेरी आंखों में अब मेरे पुत्र का निर्मल हास्य खेल रहा था। सुषमा प्रसव के बाद मंसूरी से लौटने पर अधिक आकर्षक हो गई थी। मैं अपनी लम्पट वृत्ति पर खीझ रहा था। न जाने मुझे क्या हो गया था उस समय। यही मैं सोचता रहता था। और अब वह आग तो सर्वथा बुझ चुकी थी। पर उससे जलकर जो फफोला पड़ गया था, वह इतना भारी जंजाल हो उठेगा—यह मैंने कभी न सोचा था।

और अब मुझे इस औरत में कोई दिलचस्पी न थी। इससे सब भांति पीछा छुड़ाने और भविष्य में अपने दाम्पत्य का पूरा आनन्द लेने को मैं बेचैन था। कुछ रुपये-पैसे की बात होती तो मैं उसे दे देता। पर उसका ब्याह रचाना—यह तो एक नया सिर-दर्द था। अब भला मैं किससे कहूं ? कैसे कहूं ? सुनकर कोई क्या समझेगा, क्या कहेगा ? इन्हीं सब बातों पर मैं देर तक विचार करता रहा। कुछ देर बाद मैंने धीमे स्वर में कहा—क्या तुमने किसी आदमी को पसन्द किया है ?

"नहीं, पसन्द-नापसन्द की बात ही नहीं है, मुझे आप काना, अन्धा, बहरा, कोढ़ी, अपाहिज़, बूढ़ा—किसीके पल्ले बांध दीजिए। उज्र न होगा। बस, मेरी लाज ढकी रह जाए। मेरे पिता का कुल न कलंकित हो।"

उस समय मैं उस एकान्त में उससे अधिक बात करने को सर्वथा अनिच्छुक था। मैंने केवल टालने की दृष्टि से कह दिया—अच्छा देखूंगा।

मैं चलने लगा। उसने कहा—ज़रा रुकिए। एक बात और है।

"क्या ?"

"वह कल गढ़ी में आकर सबके सामने कहूंगी। यहां कहना ठीक नहीं है।"

"अच्छा," कहकर मैं चल दिया।

दूसरे दिन पहर दिन चढ़े वह गढ़ी में आई। आकर सीधी कचहरी में जाकर दीवानजी के पास जा खड़ी हुई। उसने कहा—छोटे सरकार से अर्ज करने आई हूं। दीवानजी उसे मेरे पास ले आए। धड़कते हृदय से मैं सोच रहा था—अब यह यहां किसलिए आई है। परन्तु, उसने एक साधारण रैयत की भांति अधीनता दिखाकर कहा—सरकार, मैं असहाय विधवा स्त्री हूं, मेरे पिता ने मरते दम तक रियासत की ईमानदारी से सेवा की है, अब न मेरे मां-बाप हैं, न कोई हितू-सम्बन्धी। आप गांव के राजा हैं, इसीसे मैं आपकी शरण आई हूं।

मेरा दम घुट रहा था। पर मैंने मन पर काबू रखकर पूछा—क्या चाहिए तुम्हें !

"सरकार एक भैंस यदि मुझे खरीद दें तो उसका दूध-घी बेचकर अपना भी पेट पाल लूंगी, सरकार का भी कर्ज़ा चुका दूंगी।"

मैंने बिना किसी आपत्ति के उसे भैंस खरीदवा दी। वह कहती तो मैं उसे दो-चार हज़ार रुपये भी दे सकता था। मैं जानता था कि वह उसका अधिकार था। पर उसने तो मुझसे केवल वही मांगा जो कोई एक साधारण

रैयत ज़मींदार से मांगती है। अब यह कैसे कहूं कि उसकी यह मांग मेरी प्रतिष्ठा के लिए ही थी या उसकी प्रतिष्ठा के लिए।

उसके बाद वह और दो-चार बार मुझसे एकान्त में मिली। और ब्याह की बात पर उसने ज़ोर दिया। मैंने टालटूल की और अन्त में मैंने साफ इन्कार कर दिया

उस दिन अकस्मात् पुलिस दलबल-सहित उसे लेकर गढ़ी में आ गई। मामला क्या है, इसे जानने के लिए उसके साथ बहुत लोगों की भीड़ थी। सब भांति-भांति की बातें कर रहे थे। पुलिस वालों ने उसे मारा-पीटा भी था। चोट के निशान उसके मुंह और शरीर पर थे। उसके वस्त्र जगह-जगह से फट गए थे। बाल उसके बिखरे थे और चेहरे पर मुर्दनी छाई थी। आंखें उसकी फटी-फटी-सी हो रही थीं। शरीर में जगह-जगह खून लगा था। ओठों से भी खून बह रहा था।

पुलिस का अफसर सुशिक्षित तरुण था। वह मुझे जानता था। कहना चाहिए, मेरा मित्र था। पुलिस ने एक औरत के साथ मारपीट की है मेरे गांव में आकर ?—यह बात जानकर गुस्से से मैं लाल हो गया। मेजर वर्मा उस दिन वहीं थे। गुस्सा इन्हें भी बहुत हुआ। हम लोगों ने पुलिस को खूब खोटी-खरी सुनाई। मैंने कहा—उसने क्या जुर्म किया है, क्या नहीं ?—इसकी बात मैं नहीं कहता। पर आपको इसे मारने-पीटने का कोई अधिकार न था।

पुलिस अफसर ने शान्तिपूर्वक हमारा—मेरा और मेजर साहब का गुस्सा सहन किया। फिर उसने कहा—चौधरी साहब, मुझे आपसे एकान्त में कुछ कहना है। यदि गांव आपका न होता तो मैं यहां आता भी नहीं। इसे थाने में ले जाता। पर आपका मुझे बहुत लिहाज था—इसीसे।

मैंने कहा—आखिर मामला क्या है ?

"आप ज़रा दूसरे कमरे में चलिए।"

मैं, मेजर वर्मा, वह पुलिस अफसर दूसरे कमरे में चले आए। अफसर के कहने से मैंने भीतर से चटखनी चढ़ा दी। किसी अज्ञात भय से मेरी अन्तरात्मा कांप उठी। मैं एकटक पुलिस अफसर के मुंह की तरफ देखने लगा। और तब उसने तरबूज़ की मिसाल दी। और मैं अब बयान नहीं कर सकता। मेजर वर्मा कहेंगे, इन्होंने वह सब देखा है।

"बेशक मैंने देखा था। ऐसा खौफनाक, दिल हिला देने वाला वाकया ज़िन्दगी भर मैंने नहीं देखा था।" कुछ ठहरकर मेजर वर्मा बोले—अफसर ने मेरी तरफ देखकर—क्योंकि मैं ही ज्यादा गर्म हो रहा था—व्यंग्यपूर्ण

भाषा में कहा—जनाब, आप एक तरबूज़ लेकर उसे सिर से ऊपर उठाकर पटक दें तो कह सकते हैं कि उसका क्या परिणाम होगा?

उस नौजवान पुलिस अफसर की यह दिल्लगी मुझे न भाई। मैंने ज़रा गर्म लहजे में कहा—तरबूज़ फट जाएगा। लेकिन आपका मतलब क्या है? इस औरत ने क्या तरबूज़ की चोरी की है?

"जी नहीं! क्या किया है देखिए।" उसने कांस्टेबिल को संकेत किया। और उसने हाथ में लटकते हुए झोले को ज़मीन पर उलट दिया। एक वजनी-सी चीज़ धमाके के साथ ज़मीन पर आ गिरी। वह एक ताज़ा बच्चे की लाश थी। मिसेज शर्मा के मुंह से चीख निकल गई। भारद्वाज हाथ की सिगरेट फेंककर खड़े हो गए, दूसरे लोग भी अवाक् रह गए। भारद्वाज ने कहा—क्या ताज़ा बच्चे की लाश? हौरबेल—माई गॉड!

लेकिन मेजर वर्मा ने आगे कहना जारी रखा—बच्चे को शायद पत्थर पर या किसी सख्त चीज़ पर पटका गया था, जिससे उसका सिर उसी तरह फट गया था जैसे ऊंचे से फेंक देने से तरबूज़ फट जाता है। और उसके भीतर से लाल-लाल लोहू—तोबा-तोबा! मेजर वर्मा वाक्य पूरा किए बिना ही सिर पकड़कर बैठ गए।

फिर उन्होंने कहा—पुलिस अफसर ने बताया कि यह औरत तस्लीम करती है कि पहले हमल गिराया गया, लेकिन बच्चा ज़िन्दा पैदा हुआ। उसका गला घोटकर मार डालने की चेष्टा की गई, पर बच्चा मरा नहीं। तब उसे चक्की के पत्थर पर सिर के बल पटक दिया गया। उससे उसका सिर फट गया। पुलिस ने बताया कि मार खाने पर ही इन सब बातों का पता इसने बताया है। पर बच्चा किसका है, यह किसी हालत में बताती नहीं है। इसीसे हम निरुपाय इसे यहां लाए हैं। उसने चौधरी साहब से आग्रह किया था कि वह इस औरत से उस आदमी का पता पूछें और कानून की मदद करें। चौधरी तब बहुत परेशान हो उठे थे, इसका कारण मैं तब नहीं समझा था। अब समझा कि···

अब फिर मैं कहने लगा। कचहरी में मैं पागल की भांति चीख उठा कि उस बालक का पिता मैं था। जी हां, उस बालक का पिता मैं था। वह मेरा बच्चा था। वैसा ही जैसा सुषमा की गोद में हंस-खेल रहा है। लेकिन···

मिसेज़ शर्मा भी एकदम उठ खड़ी हुईं। उन्होंने कहा—बस, बस, चौधरी अब खत्म कीजिए। और वह बिना कुछ कहे चल खड़ी हुईं। परन्तु मैंने कहा—

"अब तो थोड़ी ही-सी बात रह गई है। मेजर तो तुरन्त वहां से चल दिए थे। मेरे लिए मामला रफा-दफा करना लाज़िमी हो गया। पुलिस को विदा कर, और अपराध का खोज-पता मिटाकर उसे मैंने उसके घर भिजवा दिया। थोड़ी ही देर बाद एक पड़ौसी के हाथ उसने भैंस मेरे पास भिजवा दी और इसके कुछ ही देर बाद मुझे सूचना मिली कि वह मर गई।"

कहानी खत्म हो गई। और सन्नाटा छा गया। चाय प्यालों में भरी हुई ठण्डी हो गई थी पर किसी ने उसे छुआ भी नहीं। एक-एक करके चुप-चाप सब लोग उठकर चल दिए : मुझे प्रतीत हुआ जैसे एक लानत की नज़र मेरे ऊपर फेंककर। मैं खामोश बैठा था। मेरा सिर घूम रहा था। आंखों में उस झोले में से निकली हुई चीज़ और सुषमा की गोद में खेलता-हंसता हुआ मेरा पुत्र! होंठों से खून बहाती फटे कपड़ों में लांछिता वह नारी और गृहिणी-गौरव-मण्डिता सुषमा—सब मूर्तियां जैसे घुलमिलकर मेरे चारों ओर तेज़ी से चक्कर काट रही थीं। भय और आवेश से मैं चिल्ला उठा। मुझे इतना ही होश है—मेज़र वर्मा ने मुझे घसीटकर अपनी मोटर में डाला था। इसके बाद तो मैं वेहोश हो गया।

जीवन्मृत

यह कहानी अब से कोई पच्चीस वर्ष पूर्व लिखी गई थी। कहानी बहुत वज़नी है। इसमें एक अत्यन्त खतरनाक भेद छिपा हुआ है जिसे उस समय तीन व्यक्ति जानते थे और अब केवल एक व्यक्ति ही उसका जानने वाला जीवित है। इस भेद का सम्बन्ध भारत के एक बहुत भारी असफल विप्लव से है। कहानी में कुछ उलझनें थीं, कुछ ऐसी बातें थीं जो लिखी नहीं जा सकती थीं, छोड़ी भी नहीं जा सकती थीं। इन उलझनों के कारण ही प्रतिदिन पचास पृष्ठ लिखने की सामर्थ्य रखने वाले लेखक को यह कहानी पूर्ण करने में नौ मास लगे थे। फिर भी कहानी चांद में छपते ही चांद की दो हज़ार की ज़मानत ज़ब्त हो गई थी। कहानी को पढ़कर तत्कालीन लाहौर हाईकोर्ट के प्रसिद्ध काउंसल (बाद में जस्टिस और फिर कस्टोडियन-जनरल) श्री अछरूराम ने आश्चर्यचकित होकर 4 पृष्ठों के पत्र में लेखक को लिखा था कि क्या वास्तव में कल्पना सत्य की ऐसी हूबहू तस्वीर खींच सकती है? कहानी-नायक के श्री मछरूराम बाल-सहचर रहे हैं। उस व्यक्ति के चरित्र के वे प्रत्यक्ष द्रष्टा हैं।

कहानी में कुछ टेक्नीकल विचित्रताएं भी हैं। पात्रों के नाम गायब हैं, कथानक नहीं है, केवल उसका आदि-अन्त है। कहानी की गति अतिशय गंभीर है। वर्ण्य प्रच्छन्न हैं, वे साधारण पाठक की समझ से परे हैं। मानवीय ऐषणाओं और मनोविकारों को मूर्त करने में कलाकार ने परिश्रम की पराकाष्ठा कर दी है। कहानी उच्चतम मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है?

•

पन्द्रह वर्ष लम्बा काल एक भयानक दुःस्वप्न की तरह व्यतीत हो गया। एक-एक क्षण, एक-एक श्वास, जीवन की एक-एक घड़ी हज़ारों बिच्छुओं की दंशवेदना में तड़प-तड़पकर व्यतीत हुई है। वह कल्पना और मानवीय विचारधारा से परे का दुःख न कहना, स्मरण न करना ही अच्छा है। मानो मैंने एक महान् पवित्र व्रत लिया था, जो एक प्रकृत योद्धा को सजने योग्य था, जिसके लिए चरम कोटि के त्याग, साहस, सहिष्णुता,

वीरता और प्रतिभा एवं ओज की आवश्यकता थी। अपनी शक्ति और व्यक्तित्व पर बिना ही विचार किए मैं रणपोत पर सैनिक गर्व से उद्ग्रीव होकर चढ़ गया। सहस्त्रावधि नर-नारियों ने हर्ष और आशा में भरकर उल्लास प्रकट किया, साधुवाद दिए, पर मानो प्रशान्त महासागर में एक साधारण चक्कर खाकर ही वह दृढ़ पोत जलमग्न हो गया और देखते ही देखते उसका अस्तित्व विलीन हो गया। रह गया अकेला मैं—साधन, शक्ति और अवलम्ब से रहित, एकमात्र तख्ते के टुकड़े के सहारे तैरता हुआ। अन्ध निशा में, एक सुदूर तारे के क्षीण प्रकाश में, उस दुर्धर्ष महाजलराशि पर, जीवन के मोह के कच्चे धागे के आसरे भटकता रहा। 15 वर्ष तक अनन्त हिंस्र जीव-जन्तुओं का आक्रमण, हड्डियों में कम्प उत्पन्न करने वाला शीत और नस-नस से प्राण खींच लेने वाली पर्वत-समान जलराशि की उत्तुङ्ग तरी के थपेड़े उस असहाय अवस्था में सहन करता रहा। 15 वर्ष तक ! और कितना भयानक, कितना रोमांचकारी, कितना अद्भुत, यह जीवन का मोह रहा ! ये प्राण कितने बहुमूल्य प्रमाणित हुए। क्या पृथ्वी पर और कोई मनुष्य भी इस तरह जिया होगा।

प्रकृति की एकान्त स्थली पर मैंने अपना शैशव और यौवन का प्रारम्भ व्यतीत किया। वहां एक ही रंग था—त्याग, शान्ति, तप और निर्वासना। जब तक शैशव पर विधान का शासन रहा, मेरे बाहरी पीत वसन और अन्तस्तल का भी एक रंग रहा, पर यौवन के विकास ने बाहर-भीतर में भेद डाल दिया। हां, संसर्ग तो कुछ न था—जो था साधारण—परन्तु नैसर्गिक वासनाओं ने प्रस्फुटित होते-होते उस त्याग, तप और निर्वासना—सबसे विद्रोह करना शुरू कर दिया। मैं ब्रह्मचारी था। उस तपस्थली पर मेरे जैसे बहुत थे, पर हमारे गुरु और उपजीवी ब्रह्मचारी न थे। हम नैसर्गिक रह ही न सके, हमारी सादगी में भी एक शान थी, हमारे ब्रह्मचर्य में एक फैशन था, त्याग-तप में भी प्रदर्शन था। जगत् के सर्व-साधारण कैसे जीवन के पथ पर बढ़ते हैं, मैं नहीं जानता; पर हम सभी में हास्य उल्लास, गोपनीय वासनाएं तथा तमोमयी भावनाएं थीं। उस आश्रम में मैं ही सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ हूं। मुझे सर्वश्रेष्ठ होना ही चाहिए—यह मैं शीघ्र ही समझ गया। कैसे ? यह नहीं बताऊंगा। आचार्य का पुत्र था। राजपुत्र तो जन्म ही से सर्वश्रेष्ठ होते हैं। इसमें अनुचित क्या ? मैं सर्वप्रथम, सर्वश्रेष्ठ पुरुष होकर उस दुर्धर्ष आश्रम से बाहर आया। संसार कैसा सुन्दर था ! मैं देखते ही मोहित हो गया। वह मेरे ऊपर श्रद्धा, आशा और प्रेम बिखेर रहा था। मैंने जाना भी न था कि मैं जीवन में इतना आदर पाऊंगा। वह आशातीत

आदर पाकर मैं गर्व से नाच उठा। मैंने अच्छी तरह अपनी मानसिक दुर्बलताएं अपने पीले उत्तरीय में लपेटकर छिपा लीं और मैं असाधारण पुरुष की तरह खुले संसार में पैर के धमाके से हलचल मचाता हुआ आगे बढ़ चला।

स्त्री को सदैव दूर से देखा और अनुमान से समझा था। आश्रम में स्त्री मात्र दुष्प्राप्य थी। फिर मैं तो मातृहीन बालक ठहरा। परन्तु सदैव ही मैंने स्त्री जाति के सम्बन्ध में विचारा। फिर भी वह क्या वस्तु है, कुछ समझा नहीं।

पर, विशाल जगत् में आते ही स्त्री भी मिली। अद्‌भुत वस्तु थी। इसे देख, फिर और किसीको देखने की इच्छा ही न होती थी। मैं जगत् को भूल गया। स्त्री-शरीर, स्त्री-हृदय, स्त्री-भावना, यह मेरा खाने और बिखेरने का अब विषय रहा, परन्तु जीवन का एक नूतन अनिर्वचीय आनन्द तो अभी मिलना शेष ही था। वह मुझे शिशु कुमार के अवतरण होते ही मिला। आह! जगत् के पर्दों के भी भीतर क्या-क्या छिपा है, और उसे भाग्यवान् किस तरह अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं, यह मैं क्या कभी विचार भी सकता था।

वाह रे मेरा सुखी जीवन और मेरा नवीन संसार! मैं सोता था हंसकर, जागता भी था हंसकर! शिशु कुमार और उसकी माता, ये दोनों ही मेरे हास्य के साधन थे। शीतकाल के प्रभात की सुनहरी धूप की तरह वह मेरा हास्य मुझे कैसा सजता था! आज 15 वर्ष से मैं उस अतीत हास्य की कल्पना करके भी एक सुख पाता हूं।

देश मेरा प्राण और देश-सेवा मेरा व्रत था। यह बात कुछ मेरे मन के भीतर नहीं उपजी, प्रत्युत मुझे बचपन से ही सिखाई गई थी। उस आश्रम की उन अति गरिष्ठ पुस्तकों के अलावा—जिनसे सदैव भयभीत रहने पर भी मेरा पिण्ड नहीं छूट सका था—यही एक प्रधान विषय था, जिसे आश्रम के गुरु से शिष्य तक भिन्न-भिन्न शब्दों और शैलियों में सोचते विचारते थे।

देश ही मातृभूमि है, वह मातृभूति-माता जन्मदात्री माता से भी पूजनीय है। वही मातृभूमि विदेशी अत्याचारियों द्वारा दलित है। उसका उद्धार करना हमारे जीवन का एक व्रत है। बस, यही हमारे देश-प्रेम की रूपरेखा थी। मातृभूमि का उद्धार कैसे किया जाए, यह मैंने न कभी सोचा, न समझा, न किसीने मुझे बताया ही। मैं मातृभूमि का उद्धार करूंगा, यह मैं चिल्लाकर कहता। पर किस तरह, यह नहीं जानता था। और इसीलिए मैं अब तक समय-समय पर चिल्ल-पुकार करने के सिवा और कुछ कार्य इस विषय में कर भी नहीं सका। मैंने समझा, यही यथेष्ट है। इसे करने में

धन भी मिला और यश भी। रोज़गार-धन्धे को ढूंढ़ने की दिक्कत भी न उठानी पड़ी, यही चिल्ल-पुकार करना मेरा व्यवसाय हो गया। मैं अब जिह्वा और लेखनी दोनों से यही चिल्लाया करता। निदान, देश पर मरने वालों की फेहरिस्त में मेरा नाम दूर से ही चमकने लगा। मेरी स्त्री हंसती थी। वह मुझे जीवित रखना चाहती थी, मारना नहीं। मैं कह दिया करता —ये तो कहने की बातें हैं। मरने का ऐसा यहां कौन-सा प्रसग है? बस, यही उसके हास्य का विषय था। शिशु कुमार की बात कैसे भूली जाए? हंसने में चार चांद तो वही लगाता था।

पर मैंने जो कुछ समझा वह मेरी जड़ता थी। देश का अस्तित्व एक कठोर और वास्तविक अस्तित्व था। उसकी परिस्थिति ऐसी थी कि करोड़ों नर-नारी मनुष्यत्व से गिरकर पशु की तरह जी रहे थे। संसार की महा-जातियां जहां परस्पर स्पर्द्धा करती हुई जीवन-पथ पर बढ़ रही थीं, वहां मेरा देश और मेरे देश के करोड़ों नर-नारी केवल यह समस्या हल करने में असमर्थ थे कि कैसे अपने खण्डित, तिरस्कृत, अवशिष्ट जीवन को खतम किया जाए? देशभक्त मित्र मेरे पास धीरे-धीरे जुटने लगे। उन्होंने देश की सुलगती हुई आग का मुझे दिग्दर्शन कराया। मैंने भूख और अपमान की आग में जलते और छटपटाते देश के स्त्री-बच्चों को देखा। वहां करोड़ों विधवाएं, करोड़ों मंगते, करोड़ों भूखे-नंगे, करोड़ों कुपढ़-मूर्ख और करोड़ों ही अकाल-ग्रास बनते हुए अबोध शिशु थे। मेरा कलेजा थर्रा गया। मैं सोचने लगा, जो बात केवल मैं कहानी-कल्पना समझता था, वह सच्ची है, और यदि मुझमें सच्ची गैरत थी, तो मुझे सचमुच मरना ही चाहिए था। मैं भयभीत हो गया। मैं कह चुका था कि मैं मरने से पीछे हटने वाला नहीं हूं। अब क्या करता? मैं बिलकुल पशु तो नहीं, बेगैरत भी नहीं, परन्तु मैं मरने को तैयार नहीं था। फिर भी मैं ज़बान लौटा न सका, मेरी वाग्धारा और लेखनी वैसी ही चलती रही। वास्तविकता का ज्यों-ज्यों दिग्दर्शन मुझे हुआ, वह उतनी ही अधिक मर्मस्पर्शिनी हो गई। बोलना और लिखना मैंने सीखा था, फिर वह मेरा स्वाभाविक गुण था। शीघ्र ही मेरी सोलहों कलाएं पूर्ण हो गईं। मैं देश में सितारे की भांति चमकने लगा। मेरा सम्मान चरमकोटि पर पहुंचा; पर मेरा हास्य, मेरा सुख सदा के लिए गया। मैं सदा ही शंकित, चकित और चिन्तित रहता, मानो मृत्यु परछाईं की तरह सदा मेरे पीछे रहती थी। मैं उससे बहुत ही डरता था। अब मृत्यु ही मेरे हृदय और मस्तिष्क के विचारने का विषय रह गई, परन्तु क्या कहूं? इस दुःख में भी एक वस्तु थी, जो प्राणों से चिपट रही थी वही स्त्री और शिशु कुमार।

राजा साहब को मैंने कभी नहीं समझा, पर उनसे कभी डरा भी नहीं। उनके नेत्र अद्‌भुत थे, और देखने का ढंग भी अद्‌भुत—छोटा-सा मुख, बड़ी-बड़ी मूंछें, उसपर भारी-सा हम्मामा, और काले चश्मे से ढकी हुई वे अद्‌भुत रहस्यमयी आंखें। सभी कहते थे, राजा साहब से हम डरते हैं, पर मैं कभी न डरा। वे आते ही सदैव पहले मुझे प्यार करते, तब पिताजी से बात करते थे। वे पिताजी के अनन्य भक्त थे, पिताजी के दीक्षा लेने के पूर्व से ही। उनके संन्यस्त होने के बाद तो वे उनके शिष्य ही हो गए थे। बहुधा उनमें एकान्त में बातचीत होती, घण्टों और कभी-कभी दिनों तक। वे खाना, पीना, सोना भी भूल जाते। तब भी मैं उनके विषय को न समझ सका था, और अब, इतना बड़ा होने पर भी, नहीं समझ सका। एक ही बात प्रकट थी कि वे बड़े भारी देशभक्त हैं। मैं भी देशभक्त था। बस, यही हमारा-उनका नाता था। वह धीरे-धीरे बढ़ा। पहले वे जैसे मुझे प्यार करते थे, वैसे अब वे शिशु कुमार को करने लगे यह बात मुझे और मेरी पत्नी को भी भाती थी। पर वे कभी-कभी शिशु कुमार को छाती से लगाकर मेरी ओर मर्मभेदिनी दृष्टि से ताकते थे कि मैं घबरा जाता था। तभी तो मैं कहता था कि वह दृष्टि बड़ी अद्‌भुत थी। उस समय मैं उसे समझा नहीं, समझा तब जब मैं स्त्री, पुत्र, प्राण, जीवन सब कुछ उन्हें देकर महापथ पर महायात्रा के लिए अग्रसर हुआ। आज वे आंखें 15 वर्ष से प्रतिक्षण मुझे घूर रही हैं। उनसे एक क्षण भी बचना मेरे लिए अशक्य है।

राजा साहब ने मुझसे जिसलिए परिचय बढ़ाया था उसका मुख्य कारण धीरे-धीरे उन्होंने खोला। मैं ज्यों-ज्यों सुनता था, भयभीत होता, पर यत्न से भय को छिपाकर उत्साह प्रदर्शित करता था। फिर भी मालूम होता, मानो वे सब समझ रहे हैं। वे थोड़ी-थोड़ी बातें करते और चले जाते। एक दिन हठात् मुझे बुलाकर उन्होंने कहा—क्या तुम अपने पिता के सच्चे पुत्र और साहसी देशसेवक हो? मैं 'न' कहता किस तरह! मैंने सिंह-गर्जन की तरह हुङ्कार भरी। राजा साहब ने मुख्य उद्देश्य बता दिया। मैं सन्न हो गया। वे मृत्यु को जेब में लिए फिरते थे, अपने लिए भी और मेरे लिए भी। उस महावीर के सम्मुख कायर बनना मेरे लिए शक्य न रहा। मैं 'हां' करता गया। स्वामीजी के सम्मुख भी 'हां' की। स्त्री ने हाहाकार किया, परन्तु एक अपूर्व गर्व-भावना मन में आ गई थी। मैं पीछे न हटा। मैंने अपना जीवन राजा साहब के हाथों सौंप दिया। फिर तो मैं इस तरह उड़ा, जैसे आंधी से उड़ता हुआ और डाल से टूटा हुआ सूखा पत्ता।

मैंने अपनी आत्मा से अधिक उसपर विश्वास किया था। उसके पिता

मेरे गुरु और परम श्रद्धास्पद थे। वे अपने जीवन के प्रारम्भ से ही देश के एक अप्रतिम सेवक रहे, उनकी सन्तान कैसे देश और जाति की मित्र न होगी? मैं इसके विपरीत सोच ही न सका। इस प्रसंग से प्रथम कई वर्ष से मैं उससे परिचित था। पत्र-व्यवहार और मुलाकात सभी में वह एक उत्कट देशभक्त, वीर युवक ध्वनित होता रहा। जब मैंने उससे अपना गम्भीर अभिप्राय निवेदन किया, तो वह एकटक मेरे मुख को देखता रह गया। उसके होंठ और कण्ठ सूख गए। बड़ी चेष्टा करके उसने कहा—श्रीमन्, आपने राज्य और रियासत को धूल के समान त्याग दिया; राज्य, भोग और ऐश्वर्य से दूर हो गए; रात-दिन देश और जाति की ध्वनि आपके रोम-रोम से निकलती है। अब आप क्या सचमुच प्राणों की बाज़ी भी लगा देने को तैयार हैं?

मैं तो तैयार ही था। बिना एक क्षण रुके मैंने कहा—हां, हां, अब प्राणों को छोड़कर मेरे पास और रह ही क्या गया है? ये भी जिसकी धरोहर हैं, उसे जितनी जल्दी सौंप दिए जाएं उतना ही अच्छा। इस शरीर को इन प्राणों का भार अब सह्य नहीं है। यह गुलामी, यह काला जीवन, हमारा, हम समस्त भारतवासियों का, कैसा है, समझते हो? जैसे, एक भेड़ के बच्चे का उस बाड़े के भीतर जिसके फाटक पर शिकारी कुत्तों का पहरा लग रहा है। इस पहरे के भीतर राजा रहा तो क्या, प्रजा रहा तो क्या, जीवित रहा तो क्या और मर गया तो क्या? बोलो तुम क्या कहते हो?

उसकी आंखों से झर-झर आंसू टपक गए। उसने गद्‌गद कण्ठ से कहा—श्रीमन्, मैं भी कैसा अपदार्थ हूं! मैं अपनी स्त्री-बच्चे को त्यागने में कष्ट पा रहा हूं, परन्तु आप···ओह! आपके सम्मुख मैं लज्जित होने का कारण न पैदा होने दूंगा। मैं सोचूंगा, कल इसी समय मैं आपको वचन दूंगा। सिर्फ कल भर आप और रहने दीजिए।

"कुछ हर्ज नहीं, पर समझ लेना, मृत्यु की पद-पद पर आशङ्का है। भय और विपत्ति के बादलों में जाना होगा। ज़रा भी विचलित हुए, ज़रा भी स्त्री-बच्चों के मुख का स्मरण आया, ज़रा भी मन में भीरुता आई, तो देश अतल पाताल में गया ही समझना, साथ ही पचासों वीर मित्रों की जान जाएगी। सब कुछ मिट्टी में मिल जाएगा।"

"श्रीमन्, क्या आप नहीं जानते, मैं किसका पुत्र हूं?"

"जानता हूं, पर तुम्हें स्वयं भी कुछ होना चाहिए।"

"तब श्रीमन् का मुझपर विश्वास नहीं?"

"विश्वास? विश्वास अपनी आत्मा से भी अधिक है। मैं अपने

विश्वास से बेफिक्र हूं। मैं यह चाहता हूं कि तुम्हें स्वयं अपने ऊपर विश्वास हो।"

वह अधोमुख होकर सोचने लगा। मैंने मन में वेदना अनुभव की। लाखों युवकों में मैंने इसे चुना है, क्या मैं धोखा खाऊंगा?

मैंने उसे विदा किया, वह चला गया।

दूसरे दिन ठीक समय पर मिलते ही उसने कहा—श्रीमन्, मैं तैयार हूं। उसने अपना हाथ बढ़ा दिया। मैं घोर संदिग्ध अवस्था में था। क्षण-भर मैं उसे देखता रहा। क्या यह सच है? महान् विचारधाराओं के कार्य-रूप में परिणत होने का समय आ गया? ओह प्यारे भारतवर्ष! ···ठहरो। मैंने खड़ा होकर उसका स्वागत किया। मैं कुछ बोल न सका। मेरे नेत्रों में आंसू थे। कुछ ठहरकर मैंने कहा—प्यारे युवक, मैं प्रतिज्ञा करता हूं, प्राण रहते तुम्हारी रक्षा करूंगा। प्रत्येक खतरे को अपने सिर पर लूंगा। तुम्हें प्राणों से अधिक प्यार करूंगा, परन्तु फिर भी तुम्हें प्रतिज्ञा करनी है कि यदि कुअवसर उपस्थित हो तो अपने प्राणों को, शरीर को अपदार्थ समझोगे। अभी तुम्हारे सम्मुख जो भयानक गम्भीर भेद प्रकट होंगे, उन्हें तुम्हारे हृदय से बाहर तब तक न आना चाहिए; जब तक कि तुम्हारे हृदय को चीरकर टुकड़े-टुकड़े न कर दिया जाए। तुम सदा यह समझकर अपने जीवन को बलिदान करने के लिए तैयार रहना कि इससे सैकड़ों सच्चे वीरों के जीवन की रक्षा होगी, जो अब नहीं तो फिर कभी न कभी देश का उद्धार करेंगे। युवक के नेत्रों में स्थिरता थी। उसने सहज-शान्त स्वर में कहा—श्रीमन्, हर तरह परीक्षा कर लें।

मैंने कहा—तुम्हारे पिता की भक्ति मेरे हृदय में धरोधर है। मैंने उनसे आदेश ले लिया है। तुम्हारी यही परीक्षा काफी है। तुम केवल मुख से एक बार कह दो कि तुम भेदों को प्राणों से बढ़कर समझोगे।

"समझूंगा।"

"विपत्ति आने पर तुम स्थिर रहोगे?"

"उसी तरह, जैसे पत्थर की मूर्ति रहती है।"

"यदि तुम्हें मृत्यु का आलिङ्गन करना पड़े?"

"तो मैं उसे अपने पुत्र की तरह गले लगाऊंगा।"

"यदि तुम्हें भेद लेने के लिए असह्य वेदनाएं दी जाएं?"

"मैं धर्म से शपथपूर्वक कहता हूं कि मृत्यु-पर्यन्त उन्हें सहन करूंगा।"

"यदि प्रलोभन दिए जाएं?"

"वे मुझे विचलित नहीं कर सकेंगे।"

युवक के होंठ कांपे। नेत्रों की पुतलियां चलायमान हुईं। मैंने अधीर

होकर कहा—प्रलोभन ? क्या प्रलोभन तुम्हें चलायमान न कर सकेंगे ?

"नहीं श्रीमन्, अभी मैं बड़े से बड़े प्रलोभन को त्याग आया हूं।"

मुझे सन्तोष न हुआ। मैं उठकर टहलने लगा। मैं सोचने लगा— वेदना, यातना और मृत्यु, एक ओर हैं, परन्तु प्रलोभन ? ओह, इसका अन्त नहीं। यह युवक वेदना सहेगा, मृत्यु का आलिङ्गन भी करेगा। मैं विश्वास करता हूं, पर प्रलोभन ? ओह, विश्वास नहीं होता। शायद उसे स्वयं भी विश्वास नहीं।

युवक ने मेरे पास आकर कहा—श्रीमान् क्या विश्वास नहीं करते ?

"मेरे प्यारे मित्र, मैं तुम्हारे साथ अन्याय कर रहा हूं। मुझे विश्वास करना चाहिए।" मैंने युवक को छाती से लगा लिया। मैंने कहा—लो, अब हम-तुम एक हुए, एक महान् कार्य की पूर्ति के लिए। यदि परमेश्वर को अभीष्ट हुआ तो हम मरकर भी अमर होंगे। हम दोनों करोड़ों मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली हैं। हम पृथ्वी की महाविजयिनी शक्ति के सम्मुख चल रहे हैं—मरेंगे या विजयी होंगे।—आवेग में ही ये शब्द मुख से निकल गए। उसके बाद मेरा बाहुपाश कब शिथिल हुआ, कब वह युवक खिसक-कर मेरे पैरों में आ गिरा, मुझे स्मरण नहीं।

जगत् में असाधारण होना भी कैसा दुर्भाग्य है ! पृथ्वी की असंख्य आंखें उसीके छिद्रान्वेषण में लगी रहती हैं। वह यदि जगत् के लिए मरता है, तो जगत् की दृष्टि में यह उसका साधारण-सा कर्त्तव्य है, किन्तु यदि वह एक क्षण भी अपने लिए जीता है तो मानो पाप का पर्वत उसके सिर पर लद जाता है। क्या यह दुर्भाग्य नहीं ? अरे भाई, सभी कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी, नर-नारी अपने ही लिए तो जीते हैं ? अपने क्षण-भर के सुख और जीवन के लिए अनगिनत प्राणियों को नष्ट कर डालते हैं। कोई भी तो उनसे कुछ नहीं कहता। फिर हमपर ही यह अग्नि-वर्षा क्यों ? मैंने सब कुछ त्यागा। जीवन के कष्ट और आपत्तियों की क्या कहूं, अब तो सबको पार कर गया। अब उनकी स्मृति से क्यों मन को सन्ताप दूं ? परन्तु शरीर और हृदय, ये जब तक जीवन-तत्त्व से संयुक्त हैं, तब तक तो प्रकृत संन्यस्त में सदैव कमी रहेगी ही। यह मेरा अब तक का अनुभव है।

मैं संन्यस्त हुआ सही, पर पिता का हृदय कहां रक्खा जाए ? पुत्र तो आत्मा और रक्त-मांस में से भाग लेकर बना था, उसका मोह कहां तक त्यागूं ? कहां तक निर्मोही बनूं ? उसकी मां तो उसे जन्म देकर ही मर गई थी। उसने अल्प जीवन में जो कुछ दिया, अब भी वह अतीत के सब सुखों के ऊपर नृत्य कर रहा है। उस मधुर स्मृति की एक अमिट रेख यह पुत्र

था। इसे मैंने हाथों-हाथ पाला और उसे, जैसा कि मैंने चाहा था, संसार के सामने, क्रान्ति के नव्य कुमार के रूप में पेश किया। लक्षावधि देशवासी उसपर नाज़ करते थे और मैं अपनी सफलता पर मुग्ध होता था, उसी तरह जैसे किसान अपने कड़े परिश्रम से सींची हुई खेती को पकी देखकर मुग्ध होता है।

फिर भी मैं राजा साहब के वचन को न टाल सका। उनके भयानक साहस से मैं अवगत था। उनकी प्रत्येक गतिविधि से मैं परिचित था। पुत्र के अनिष्ट का भय पद-पद पर स्पष्ट था। किन्तु मुझे सहमत होना पड़ा। इसके अनेक कारण थे। देश के नाम पर बलिदान होने की मैं स्वयं उच्च-स्वर से पुकार कर चुका था, पुत्र को भी वही शिक्षा दी थी। अब उसे उस मार्ग से रोककर क्या राजा साहब और अन्य साथियों की दृष्टि में अपदार्थ बनता? लड़के में भी साहस और उत्साह था। पर उसके मर्मस्थल की दुर्बलता मैं जानता था। विलासिता उसे गिराएगी, मुझे भय था। उसने स्वयं नवजात पुत्र और पत्नी का विसर्जन कर उस भयानक यात्रा और कठोर कर्त्तव्य-पथ पर राजा साहब का अनुकरण करने का अपना इरादा प्रकट किया, तब मैं स्तब्ध रह गया। मैंने कहा—पुत्र, राजा साहब का मैं चिर सहयोगी हूं, परन्तु केवल मुख से। तुम तो इतने उत्साह से यह बात कह रहे हो; कदाचित् तुम अवश्यम्भावी विपद् से अवगत नहीं। कार्य की गुरुता और कठिनाई तुम यथावत् नहीं समझ रहे हो। यह तुमसे होने वाला कार्य नहीं, महादुस्साध्य है। यह लौहपुरुषों का महकमा है। इसके लिए वे पुरुष चाहिए जो लोहे का शरीर, लोहे की आत्मा और लोहे का हृदय रखते हों। मेरे बेटे, मैं जानता हूं। तुम वह नहीं हो। घर में बैठो, बैठे-बैठे जो बने करो। देश और जाति के लिए यही यथेष्ट है।

उसने एक न सुनी। वह मूर्ख मुझ पिता के सम्मुख भी कायर बनना न चाहता था। उसने अस्वाभाविक करारे स्वर में हठ प्रदर्शन किया और मुझे सहमति देनी पड़ी।

वही हुआ, जिसका भय था। पृथ्वी के उस छोर पर वे विपत्ति के अग्नि-समुद्र में बड़े कौशल और सावधानी से घुस रहे थे। अरे, जब अग्नि-समुद्र में घुसना था, फिर कौशल क्या? वह फंस गया, राजा साहब बाल-बाल बचकर निकल भागे। मैं यहीं बैठा उनकी गतिविधि का निरीक्षण कर रहा था। महासमर की प्रचण्ड ज्वालाएं यूरोप को भस्म कर रही थीं। उनकी चिनगारी कब मेरी कुटी को भस्म कर देगी, यह कहना शक्य न था। यूरोप के दैनिक पत्रों को देखने के अतिरिक्त मैं और कुछ कर ही न सकता था। मन ही न लगता था। उसके उस पत्र पर सरकारी गुप्त विभाग

के सर्वोच्च अधिकारी की एक टिप्पणी थी। उससे समझ गया, पुत्र की मृत्यु का मूल्य बहुत अधिक है। वह मूल्य मेरे पास था तो, पर मैंने बहुत चेष्टा की कि प्राण देकर उस मूल्य को न दूं। पर हाय ! अवसर ही ऐसा आ गया, मेरे प्राणों का कुछ भी मूल्य इस सौदे में न रहा। उसने सब कुछ कह दिया था। उसके वक्तव्य की सत्यता के प्रमाण मात्र मेरे पास थे। मैं कई दिन तक उसके बच्चे को छाती से लगाकर तड़पता फिरा। अपने संन्यास वेश की असत्यता मुझपर खुल गई। ओह, मुझे वह काला काम करना पड़ा। मैंने पुत्र के प्राणों की पिता की तरह रक्षा की।

पर उसके बदले हुआ क्या। देश-भर में तलाशियों और गिरफ्तारियों की धूम मच गई। होनहार, अटपटे वीरों ने हंसते-हंसते फांसी पाई। कुछ कालेपानी जाकर वहीं घुल गए। कुछ युग व्यतीत कर लौट आए। देशोद्धार का सुयोग अतल पाताल में चला गया। मेरे दुष्कर्म का यह भेद एक राजा साहब को ही मालूम था, पर वे भारत में आ न सकते थे। एक पत्र उन्होंने भेजा था। ओह, जाने दो, जब उसे भस्म कर दिया है, तब उसकी चर्चा क्यों? जिस बात के भूलने में सुख है, उसे हठपूर्वक स्मरण क्यों किया जाए ?

महाजातियों का यह संघर्ष कैसा सुन्दर है ! यदि मैं भी इन्हीं जातियों में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त करता तो क्या आज चूहे की तरह इधर से उधर प्राण बचाता फिरता ? महाशक्ति की सेनाओं की कमान इन्हीं हाथों में होती, पर जीवन में कभी वह क्षण आएगा भी ? आए या न आए, मैं अन्त तक न थकूंगा। भोजन और सोना कई दिन से नसीब नहीं हुए। नाविक के वेश में, मछलियों की सड़ी गन्ध में छिपे-छिपे सिर भन्ना गया, पर विपत्ति तो अभी सिर पर है। वह दूर पर रण की तोपों का गर्जन सुनाई पड़ रहा है। वह सर्चलाइट का श्वेत सर्प समुद्र पर लहरा रहा है। किन्तु प्रभात होते ही तो किनारे लगेंगे ? किनारे पर शत्रु हैं या मित्र, कौन जाने ? मित्र हुए तो इस बार जान बची, पर यदि शत्रु हुए तो आज ही प्राणान्त है। जीवन भी कैसी चीज़ है ? इस समय राजमहल याद आ रहे हैं। महा-रानी मानो करुण नेत्रों से झांक रही हैं, परन्तु क्या इस महायुद्ध में मैं अपने वंशधरों को भांति अपने देश के लिए जूझने में पीछे रहूं ? जूझने के ढंग तो यथावसर निराले होते ही हैं, परन्तु जिन विदेशियों को मैं मित्र बनाकर अपना और अपने देश का ऐसा गम्भीर दायित्व सौंप रहा हूं, वे क्या सच्चे रहेंगे ? एक विदेशी से प्राण छुड़ाने को दूसरे का आश्रय लेना सुन्दर नीति तो नहीं, परन्तु दूसरी गति भी नहीं थी। फिर, अब लौटने का उपाय भी

तो नहीं है। एक बार देश में आग फैल जाए। अमन, आराम और शान्ति की इच्छा नष्ट हो जाए, देश जूझ मरने की हौंस मन में उत्पन्न करे, फिर तो आज़ादी स्वयं ही आ जाएगी। यह महासमर तो महाराज्यों के भाग्य का निबटारा करेगा, महाजातियों के भाग्य का निबटारा तो कहीं अन्यत्र ही होगा। सुदूरपूर्व में शान्त समुद्र की लहरें रक्त से लाल होंगी, एशिया की प्रसुप्त आत्मा जागरित होकर हुंकार भरेगी, तब यूरोप का श्वेत दर्प ध्वस होगा। उसी दिन के लिए तो मेरा आयोजन है। ओह! अभी मुझे बहुत काम हैं, पहली यात्रा में ही यह विघ्न हुआ।

अभी मुझे बारम्बार चीन, जापान, रूस, अमेरिका और न जाने कहां-कहां जाना होगा। महाविध्वंस क्या यों ही हो जाएगा? परन्तु वह युवक तो फंस गया। बुरा हुआ। बचना सम्भव ही न था। महासाहस उसमें न था। चिन्तनीय बात तो यह है कि सब कुछ उसे ज्ञात है। आवश्यक कागज़ भी बहुत-से वहीं रह गए हैं। तब वह क्या प्राणों के लोभ से देश को चौपट करेगा? विश्वासघाती होगा? मरने में क्षण-भर का ही तो दुःख है। वह अवश्य उसे सह लेगा, भेद न खोलेगा। फिर भी सचेत रहना आवश्यक है। मुझे अब नया कार्यक्रम बनाना उचित है। अपने मार्ग की गति भी बदलनी उचित है। ये नाविक विश्वसनीय हैं, परन्तु मैं कुछ और ही करूंगा।

ओह देश! मेरे प्यारे स्वदेश!! यह तन, मन, धन, सब तुझपर न्यौछावर है। तेरी एक-एक रज-कण में मेरे जैसे लाख शरीर बनते-बिगड़ते हैं। फिर इस शरीर का क्या मोह? मेरे प्यारे स्वदेश! मैंने सब कुछ तुझे दिया है। अब प्राण भी दूंगा। इस धरोहर को पास रखने योग्य अब मेरे पास ठौर भी नहीं रह गया है। आह, क्या कभी मैं तुझे देख सकूंगा? वह नील श्यामल रूप! अरे बचपन की क्या-क्या बातें याद आ रही हैं? परन्तु नहीं, मुझे इस समय कायर नहीं बनना चाहिए। मैं प्रण करता हूं, देश की भूमि पर तभी पैर रक्खूंगा, जब उसे पूर्ण स्वाधीन कर लूंगा।

प्राण बचे तो, पर वे मोल बिक गए थे। उनपर मेरा काबू न था। अब स्वेच्छानुसार मैं न कुछ कर सकता था, न सोच सकता था। उन बहुमूल्य गोपनीय बातों के बदले मुझे गुप्त विभाग में उच्च पद मिला था। मेरे प्राण जैसे मेरे लिए कीमती थे, वैसे ही उस गुप्त विभाग के लिए भी थे। मेरा जीवन रहस्यमय था। मेरे हृदय में कुछ और भी है, तथा मेरी ओट में कुछ रहस्य-भेद होगा, इस तत्त्व ने मेरे प्राणों को इस अधम शरीर में सुरक्षित रखा और इसका पुरुष ने यही गनीमत समझा। शिशु की फैली हुई बांहें और हंसता हुआ मुख मैं कुछ काल तक देखता रहा, उस जेल-

यंत्रणा और मृत्यु की कोठरी में भी और इस अफसरी की सुखद किन्तु भीषण कुर्सी पर भी। परन्तु पाप के पथ पर तो पाप की हाट लगी ही रहती है। फिर लिली की बात क्यों छिपाऊं? न जाने क्यों वह मुझ अभागे पर मुग्ध हुई। उसका पति मेरा उच्च आफीसर था। हम लोगों ने विष द्वारा उस कण्टक को दूर कर दिया। अब लिली थी और मैं था। परन्तु मृतात्मा हमारे बीच में जीवित की अपेक्षा अधिक भयानक रूप में थी। एक बार फांसी के फन्दे को हम दोनों ने अपने संयुक्त गर्दनों के इर्द-गिर्द देखा। हमने सोचा, यहां से भाग चलें। तार दिया, जहाज़ का टिकट भी ले लिया, पर भाग न सके। जहाज पर खूनी आसामी कहकर पकड़े गए। पर लिली का रोना देखने योग्य था। वह छूटती कैसे, हड्डियों तक घुस गई थी। हताश, दोनों मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हो गए। परन्तु ये कठिन प्राण तो इस शरीर में जमकर बैठे थे। उन्हीं शक्तियों ने प्राण बचा लिए। मैं लिली के मृतक पति के पद पर उसी मृतक के नाम से बैठ गया। लिली अब वास्तव में मेरी पत्नी थी। अब मानो मैं मर गया हूं, मैं नहीं हूं, जिसे मैंने लिली के लिए मारा, मानो वह मैं हूं। शिशु का वह हास्य और पत्नी के वे नेत्र अब भी कभी-कभी स्वप्न की तरह स्मरण आते हैं, पर पूर्वजन्म की इन बातों में अब क्या रक्खा है? लिली से मैं अब भी प्यार की आशा करता था। छिः! कैसी विडम्बना है! पति के हत्यारे को प्यार करना क्या साधारण है? फिर यदि प्रेम की सुखद गोद में हत्या जैसा पाप घुस जाए, तब वह जिन्हें सुखद प्रतीत हो वे निश्चय ही राक्षस होंगे। हृदय की उन वेदनाओं को क्या कहा जाए, जिन्होंने शरीर को नष्ट कर दिया है? और वह अभागा भी कैसा दुःखी जीव है जो उसी के साथ रहने को विवश किया गया है जो उससे घृणा करती है? हमारे रस की प्रत्येक बूंद में विष है, पर उसे रस कहकर पीना हम दोनों के लिए अनिवार्य है! हाय रे प्रारब्ध!

मैं अभागिनी अबला स्त्री क्या करती। मरना सुखकर था, परन्तु शिशु कुमार के मन्द हास्य ने उसे दुरूह कर दिया। क्या कोई भी मां अपने फूल से बच्चे को इसी तरह हंसते छोड़कर मर सकती है? अब तो मैं पहले मां थी, पीछे पत्नी। इसीलिए गोद के शिशु को धरती में पटककर परोक्ष पति के नाम पर मरना मेरे लिए सम्भव ही न रहा। मैं सुख-दुःख के बीच झूलती रही। मैं मृत्यु और जीवन की ड्योढ़ियों में पडी ठोकर खाती रही। मुझ दुखिया के कष्ट, मूक मनोवेदना का अनुमान तो कीजिए? मेरी बात पूछने वाला कौन था? मेरे मन को सहारा किसका था? मैं पति के सहवास-काल की प्रत्येक घटना, प्रत्येक बात, अपनी आंखों से प्रतिक्षण देखती, सोते

समय और जागते समय भी। मैं कभी हंसती और कभी रो देती। कभी सोते-सोते या बैठे ही बैठे चमक उठती। मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानो वे आ गए। उन्होंने अभी-अभी शिशु कुमार को आवाज़ दी है। कण्ठ-स्वर को मैं प्रत्यक्ष सुन पाती। मैं द्वार की ओर दौड़ती, परन्तु तत्काल ही समझ जाती, ओह ! कुछ नहीं, यह सब मनोविकार था। मैं नहीं कह सकती कि सोने के समय जागती थी या जागने के समय सोती थी। प्रायः मैं जड़वत् बैठी रहती। उस समय मैं किसी की कोई बात ही न सुन पाती थी। मैं उस समय देखती थी—वे उन्हें पकड़कर फांसी पर चढ़ा रहे हैं, उनके शरीर में तलवार घुसेड़ रहे हैं। शरीर रक्त से भर रहा है। मैं एकाएक चीत्कार कर उठती, और फिर धरती पर धड़ाम से गिरकर बेहोश हो जाती थी।

शिशु कुमार को देखकर ही मैं सचेत रह सकती थी। मुझे तब वास्तव में हंसना ही पड़ता था। वह उनके सिखाए ढंग पर मेरे गले में बांहें डाल-कर जब ज़रा-ज़रा तोतली वाणी से सितार की झनकार के स्वर में कहता—माताजी, 'रूठो मत' तब मैं मानो किसी गूढ़ जगत् से एकाएक भूतल पर आती। होंठों पर मुस्कान न आती, पर नेत्रों में आंसू आ जाते थे। उन्हें शिशु कुमार से छिपाने के लिए मैं उसे ज़ोर से छाती से लगा लेती थी।

उस दिन स्वामीजी एकाएक मेरे सम्मुख आ खड़े हुए। उनके होंठ कांप रहे थे और पैर लड़खड़ा रहे थे। उनके मुख पर हवाइयां उड़ रही थीं, वे कुछ कहना चाहते थे, पर बोली न निकलती थी। मैं घबराकर उठ खड़ी हुई। मैंने कभी उन्हें इतना विचलित न देखा था। मैंने कहा—बात क्या है पिताजी ? "वह जीवित है, वह आ रहा है" वे अधिक न बोल सके। आंसुओं की धारा उनके नेत्रों से बहने लगी। उन्होंने मुंह फेरकर अच्छी तरह रुदन किया।

मेरे शरीर में रक्त की गति रुक गई। मेरी हड्डी-हड्डी कांपने लगी। मैंने खड़े रहने की बड़ी चेष्टा की, पर न रह सकी। मेरा सिर घूम रहा था, छाती फटी पड़ती थी। मैं बैठ गई या गिर गई, स्मरण नहीं।

स्वामीजी ने घूमकर कहा—बेटी, आज सातवीं तारीख है। दस तारीख के प्रातःकाल जहाज बम्बई के बन्दरगाह पर लगेगा। हमें आज ही चलना होगा। तुम अपना सामान ले लो। अभी समय है। गाड़ी साढ़े नौ पर चलती है। वे इतना कहकर चले गए।

मार्ग में मैं जीवित थी या मृत, नहीं कह सकती। बम्बई कब पहुंची, स्मरण नहीं। रेल दौड़ रही थी, मैं मानो आकाश में घुसी जा रही थी, मानो मैं अभी सूर्यमण्डल को भेदन करूंगी। डेक पर सहस्रावधि नर-नारी खड़े थे। एक भीमकाय जहाज़ उन्मत्त समुद्र की जल-राशि के हृदय को

विदीर्ण करता हुआ भयानक दानव की तरह तट की ओर निकट आ रहा था। मेरी संज्ञा प्रायः लुप्त थी। जहाज़ के डेक पर लगते ही नर-नारियों का समुद्र किनारे उतरने लगा। मैं सम्पूर्ण चेष्टा से उनके बीच कुछ खोज सकने-भर की संज्ञा संचित कर रही थी। सब कुछ एक रंगीन बिन्दु के समान दीख पड़ता था। नहीं कह सकती कब तक हम लोग खड़े रहे। हठात् स्वामीजी ने कहा—इस जहाज़ में तो वह नहीं है। क्या कारण हुआ! उनके प्रदीप्त नेत्र दूर तक घूमकर मेरे मुख पर आ लगे। बम्बई आने पर यही शब्द मैं ठीक-ठीक सुन सकी। मैं समझी, यह सब मृग-मरीचिका थी। वे नहीं आए, वे नहीं आएंगे। मैंने अनन्त तक फैली हुई जल-राशि पर दृष्टि दौड़ाई। हठात् मेरे मन में एक भाव उदय हुआ। मैंने कहा—पिताजी, तब मैं कहां जाऊंगी? मेरे ये शब्द मेरे ही कानों में तोप के भीषण गर्जन की तरह प्रतीत हुए।

स्वामीजी ने मेरे मुख की तरफ देखा। उन्होंने आश्वासन देकर कहा—अवश्य कुछ कारण हुआ है। पत्र या तार शीघ्र मिलेगा। तब भविष्य के कर्त्तव्य पर विचार करेंगे। अभी घर चलो। मैंने एक पग भी न हिलाया। बहुत तर्क हुआ। विजय मेरी हुई। सोते हुए शिशु कुमार को छोटी बहू की गोद में सौंप, उसे बिना ही अच्छी तरह देखे, उसे बिना ही चूमे, मैं अनन्त समुद्र के पार, उस अज्ञात प्रदेश में, उस पति को ढूंढ़ लाने चली। मेरा माता होना धिक्कार हुआ! हाय रे! अधम नारी हृदय!!

इस कृष्णकाय और साधारण पुरुष ने क्या जादू कर दिया? ओह, मैंने कैसा घोर दुष्कर्म किया? अब इन रक्तरंजित हाथों को कौन प्यार करेगा! यही व्यक्ति? और वह कितना भयानक, कितना घृणास्पद है! क्यों यह पापिष्ठ हमारे बीच में आया? क्यों इसने हमारे प्रशान्त प्रेम में आग लगाई? मैं इसे घृणा करती हूं। पति की मृतक आंखें कैसी चमक रही हैं! वे सब कुछ जानती हैं। उन्होंने अपना सभी प्रेम और विश्वास मुझे दिया, इसीलिए कि मैं अपनी वासना के लिए उनका प्राण हरण करूं? परन्तु अब तो मैं इसके साथ रहने के लिए बाध्य हूं, छुटकारा पा नहीं सकती। यह वह विदेशी कृष्णकाय हत्यारा नहीं, मेरा वही पति है। इसमें क्या राजनीतिक महत्त्व है, इसे तो वह गुप्त-विभाग जाने, जिसने इस भाग्यहीन को इतना बड़ा पद दिया है। पर मैं कैसे मान लूं? क्या आंखें फोड़ लूं, हृदय को चीर डालूं?

सुनती थी कि यह विवाहित है। इसके पुत्र, पत्नी है। आज उसे देख भी लिया। वह इसे ले जाने के लिए यहां आई है, पर वह सब कैसे सम्भव

हो सकता है ? अब यदि यह अपना पूर्व नाम भी स्मरण करेगा तो उसकी सज़ा मौत है। और कैसी भयानक बात है ! मैं उससे मिली, कितनी सीधी-सादी, दुखिया स्त्री है ! वह अपने हठ पर है ! किन्तु उसे मालूम नहीं कि प्रबल और समर्थ हाथ उसके विपरीत है। अपराध का इतना समर्थन कहां किसने देखा होगा ? ओफ !

कल मैंने उन्हें देखा। वही थे, किन्तु कितना परिवर्तन दो गया है ! फिर भी मेरी आंखें क्या उन्हें भूल सकती थीं ? उन्होंने भी देखा। मैं समझ गई, उनकी हड्डी तक कांप गई है, पर क्यों ? वे दौड़कर क्यों नहीं मेरे पास आए ? इतना डरे क्यों ? क्या पहचाना नहीं ? ओह, हे ईश्वर, तब मेरे लिए ठौर कहां है ? इतना करके भी मैं वंचित रही ? आशा के कच्चे तार के सहारे ये प्राण इस अधम शरीर को यहां तक ले आए। आकर जो पाना था पाया भी, पर क्या मैं पाकर भी न पा सकूंगी ? ओह पति के नाम पर मर-मिटने वालियों से भी मेरा साहस बढ़कर है। मैं आगे बढ़ी। दिन छिप गया था। गहरा कोहरा इस विदेश की महानगरी में अद्भुत और भयानक मालूम होता था। प्रकाश-स्तम्भों की धुंधली रोशनी में मैं उनके पीछे बढ़ी चली गई और साहसपूर्वक उनका हाथ पकड़ लिया। उन्होंने रुककर देखा, भद्र विदेशी भाषा में उन्होंने कहा—देवि, आप कौन हैं ? क्यों आपने मुझे रोका है ? आपका क्या काम है, कहिए ?—अरे ! वही तो कण्ठ-स्वर था। सदा तो इसे मैंने सुना है, पर अपरिचित शब्द-जाल कैसा ? मैं रो उठी, मैं गिर गई, चरणों पर नहीं, धरती पर। उन्होंने मुझे उठाया, तसल्ली दी। मैंने देखा, वही, वही, वही हैं। मैंने गले में बांहें डाल दीं। जितना रो सकती थी, रोई। मैंने कहा—दासी पर यह निष्ठुरता क्यों ? यदि यह अपराधिनी है, तो शिशु कुमार को क्यों भूल गए ? देखो प्यारे, वह सूखकर कांटा हो गया है। वह सदैव तुम्हारा ही नाम रटा करता है। तुमने स्वयं उसे अपना नाम रटाया था। वे भी रो उठे। अन्त में उन्होंने कहा—प्रिये, धीरज धरो। मेरे कलेजे की आग देखो। मैं जीवन्मृत हूं, मैं कब का मर चुका हूं। सरकारी खातों में मेरी मृत्यु-तिथि दर्ज है। पर जो वास्तव में मर गया है, उस नाम से मैं जीवित हूं। उसका नाम मेरा नाम है, उसका पद मेरा पद है, उसकी स्त्री मेरी स्त्री है। ओह ! वह मुझे घृणा करती है, और मैं उसे। हम दोनों हत्या के अभियुक्त हैं। फांसी की रस्सी हम दोनों की गर्दनों के चारों ओर पड़ी है। ज्यों ही हमने यह भेद खोला—अपना पूर्व नाम जाना, कि उसका फन्दा कस दिया गया। उसी दिन यह अधम देह प्राणों से रहित हो जाएगी।

मैंने यह भेद समझा ही नहीं। मैं अवाक् रह गई। पर जो कुछ सुनना था, सभी सुना। मैंने कहा—मैं अधिकारियों से कहूंगी, कानून से लड़ूंगी। उन्होंने कहा—सभी तरह मेरे प्राण जाएंगे। मेरे प्राण लेकर तुम क्या करोगी? क्या इसीलिए यहां आई हो?

मैं क्या करती? मैं मूच्छित हो गई। उन्होंने धीरे-धीरे कहा—मेरे पास बहुत धन हो गया है। चाहे जितना ले जाओ। शिशु कुमार को पढ़ाओ और अपने सधवा होने की बात भूल जाओ। मैं यदि मर सकता तो तभी मरता, जब वीर की तरह मरने का संयोग आया था। अब इस तरह जीने के बाद, ज्यों-ज्यों पाप और कायरता शरीर में घुसती जाती है, त्यों-त्यों मैं मरने से भय खाता जाता हूं। प्रिये, तुमने बहुत सहन किया है, और भी सहन करो। मुझे तब तक जीने दो, जब तक जी सकता हूं। ग्लानि और अनुताप को मैं सहन कर गया हूं। इससे अब ज्यादा कष्ट और कौन होगा?

मैंने कहा—जिस मूल्य में तुम जीवित रहो, वह मैं दूंगी। मैं भयभीत नहीं, शोकाकुल भी नहीं। मैं दस वर्ष पूर्व भीरु स्त्री थी, पर तुम्हारे वियोग और जीवन की कठिनाइयों ने मुझे पुरुष-सा साहसी बना दिया है। अब मैं उन तमाम अतीत स्मृतियों को भूल जाऊंगी, जिनके सहारे जी रही थी। जब तुम 'जीवन्मृत' हो तो मैं भी जीवन्मृत हुई। वे सब कुछ पिछले जन्म की बातें हुईं। वह गंगा का उपकूल, वे जीवन के उल्लासपूर्ण दिवस, उस वनवीथिका में तुम्हारा खो जाना, वह शिशु कुमार के जन्म से प्रथम का प्यार, उसके जन्म-दिन का वह दुर्लभ उपहार···आह! वे सब मेरे पूर्व-जन्म की बातें हैं। मैं उस जन्म में पुत्रवती, सौभाग्य-सिन्दूर की अधि-कारिणी, प्रेम और दुलार की पुतली थी। आज उन्हें भूलना भी कठिन है और याद रखना भी दुर्लभ! पर भूलूं तो क्या? और याद रखूं तो क्या? जिसे पा नहीं सकती, उसकी कल्पना करने से ही क्या लाभ?

मेरे इस असाधारण साहस का यही फल हुआ। मैंने उन्हें विदा किया, इस जन्म के लिए। मेरा उनका शरीर-सम्बन्ध विच्छेद हुआ। उन्होंने मुझे बहुत-कुछ देना चाहा, पर मैंने स्वीकार न किया। मैंने कहा—तुमने अपने सुख दिनों के में जो शिशु कुमार मुझे दिया है, वही मेरे लिए बहुत है। मैं उसी के सहारे अवशिष्ट आयु काट दूंगी। तुम – तुम जाओ और पाप, छल, पाखण्ड, विश्वासघात में जीवन बिताओ। मेरे जीवन्मृत स्वामी, तुम्हें धिक्कार है! मैं तुम्हारा धन छू नहीं सकती, मैं पसीना बेचकर अपना और शिशु कुमार का पेट भरूंगी।—मैं चली आई।

मुहब्बत

राजा-रईसों के जीवन कितने विलासमय, वासनापूर्ण और अरक्षित होते हैं, और बहुधा वे खतरनाक घटनाओं के शिकार हो जाते हैं—इसका एक तथ्यपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत कहानी में है। आचार्य का राजा-रजवाड़ों से गहरा सम्पर्क रहा है, अतः इस कहानी में उसकी अनुभूति की स्पष्ट छाप है।

•

राजा साहब की आंखें हंस रही थीं। उन्हीं आंखों से उन्होंने मेरी ओर देखा, मुस्कराए, और मसनद पर उठंग बैठकर मेरी ओर झुककर धीमे स्वर में कहा—देखी मुहब्बत! मतलब न समझ सकने पर मैंने आंखों में ही प्रश्न किया। राजा साहब ने चार बीड़ा पान मुंह में ठूंसते हुए कहा—आप आंख वाले हैं—देखिए साहब।

राजा साहब बहुत खुश थे। रियासती अदब और शिष्टाचार वातावरण में भर रहा था। कुंवर साहब भी एक कोने में सजे-धजे बैठे थे। जरवफकी शेरवानी, सिर पर मंडील उसपर हीरों की कलगी, गले में पन्ने का भारी कण्ठा। मगर आंखें नीचे झुकी हुई। राजा साहब की एक-एक बात पर कहकहे पड़ रहे थे, बीच-बीच में मुखरा बी साहब भी फिकरा कस देती थीं। जिसपर कहकहा तो लाज़िमी था, मगर क्या मजाल कि कुंवर की मूंछों का बाल भी मुस्करा जाए। महफिल में बैठना उनके लिए दरबारी अदब के लिए जितना ज़रूरी था उससे अधिक महाराज के अदब से आंखें नीची रखना भी जरूरी था। सरंगियों की उंगलियां सिसकारी भर रही थीं और तबला तड़पकर हाय-हाय कर रहा था। मुझे यह सब 18वीं शताब्दी का सामन्तशाही दृश्य बिल्कुल ही भोंड़ा जंच रहा था। संगीत के नाम पर वह केवल चीख थी और नृत्य के नाम पर उछल-कूद। मगर लोग थे कि छिन-छिन पर वाह-वाह के नारे लगा रहे थे। कहकहों की धूम मची थी और वेश्याओं पर वाहवाही के साथ इनाम, न्यौछावरी की वर्षा हो रही थी। मुस्कराना तो मुझे भी पड़ रहा था। क्या करूं, राजा साहब का इतना लिहाज़ तो ज़रूरी था। मगर 'वाह' तो मेरे फूटे मुंह से एक बार भी नहीं निकलती थी। अब जो राजा साहब ने मेरी आंखों को एक चुनौती दी तो मैं चश्मे से घूर-घूरकर अहमक की तरह इधर-उधर देखने लगा। राजा

साहब मेरी बेवकूफी पर रहम खाकर रह गए।

लेकिन कुछ क्षण बाद ही राजा साहब ने हुक्म दिया—मुहब्बत खड़ी हो। और तब मैंने मुहब्बत को देखा, कुछ समझा भी। कम से कम राजा साहब का दिल तो समझ ही गया। लम्बा, छरहरा, नपातुला बदन, चमकते सोने का रंग, बड़ी-बड़ी मदभरी आंखें, चांदी का-सा साफ माथा, भौंरे-सी गुंजनभरी लटें, दूज के चांद के समान पतली भौंहें और बिल्कुल 16 अंगुल की कमर। पैर की ठोकर दी तो घुंघरू बजे; फिर ठोकर दी, फिर दी, ठोकरों की झड़ी लगाई, घुंघरू बजे छम-छम, छमाछम, छमाछम। छम-छमाछम। और फिर देखी वह सोलह अंगुल वाली कमर, बल खाती, इठलाती नागिन-सी लहराती और उस पर तैरता वह अछूता यौवन। मद-भरी आंखें, तिरछी भौंहें। यहीं पर बस नहीं। कोयल की कूहू। पंचम की तान।

मसनद पर झुककर मैंने राजा साहब के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—देखा महाराज; अब देखा।

राजा साहब ने भौंहें तरेरकर कहा—अब क्या देखा ? खाक। अब तो धुनिए-जुलाहे सब देख चुके। सबकी नज़र पड़ चुकी, जूठी हो चुकी। उन्होंने फिर अपना चांदी का पानदान खोल चार बीड़े पान के हलक में ठूंस लिए और मेरी तरफ से मुंह फेर लिया।

क्या करूं ! देहाती दहकानी ठहरा। राजा साहब को खुश करने का कोई ढंग ही नहीं नज़र आया। मन मारकर मुहब्बत का नृत्य देखने लगा।

दोनों गालों में पान ठूंसे, उसे पेश करते, हंसते हुए एक ने कहा—गज़ल गाओ। बनारस के बबुआ साहब ने एक मुट्ठी इलायचियां पेश करते हुए कहा—जी नहीं, कोई ठुमरी। मुंशीजी तड़पकर बोले—नहीं सरकार, कोई पक्की चीज़ होने दीजिए। राजा साहब ने मेरी ओर मुंह करके कहा—आप फर्माइश कीजिए। मैंने झेंपते हुए कहा—कोई ऐसी चीज़ सुनाइए जिसमें मुहब्बत का दरिया बह जाए।

राजा साहब खिलखिलाकर हंस पड़े। हंसी का फव्वारा फूट गया। भला राजा साहब हंसें और महफिल चुप रह जाए ? बा साहबा ने भी फिकरा जड़ा—तो हुज़ूर, इस मुहब्बत के दरिया से प्यास किसकी बुझेगी ?

मैंने कहा—प्यास पंछियों की बुझेगी, मगर कोई मर्द बच्चा डुबकी लगा बैठे तो अजब नहीं।

राजा साहब दुहत्तड़ जांघों पर मारकर उछल पड़े—खूब कहा, खूब कहा ! मुहब्बत झेंपकर झुक गई। कुछ देर में कहकहा का तूफान थमा और मुहब्बत ने एक गज़ल गाई।

जान बची लाखों पाए। राजा साहब खुश हो गए। मैंने समझा, ठीक मुसाहिबी हुई।

दूसरे दिन रात को राजा साहब ने बुलावा भेजा। जाकर देखा दीवानखाने में राजा साहब और मुहब्बत दोनों ही हैं। पास में राजा साहब के मुंह लगे पेशकार राजा साहब का बड़ा-सा चांदी का पानदान गोद में लिए बैठे हैं।

मुहब्बत ने आधी ताज़ीम दी और सलाम किया। मैंने कहा—मुबारकबादी देता हूं। आप एक ही कमाल हैं।

"जी हां, कल आप नहीं बना सके, सो अब बनाइए"—मुहब्बत ने टेढ़ी नज़रों से देखकर कहा।

"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है, आपका फन ही ऐसा है कि जो देखेगा सिर धुनने लगेगा।"

"आखखा, तो इसीसे हुज़ूर कल इस कदर सिर धुन रहे थे।" मुहब्बत ने खास तीखा तीर चलाया था। मैंने झेंप मिटाने को कहा—जी मैं दहकाती न सही—सारी महफिल ही सिर धुन रही थी।

"शुक्रिया, तो इस बात के हुज़ूर एक मातवर गवाह हैं।"

राजा साहब ने नकली गम्भीरता से कहा—वे सब सिर धुनने वाले सही सलामत तो हैं न?

मुहब्बत ने कहा—एक वे मुन्शीजी तो कल ही मर रहे थे।

× × ×

राजा साहब पचास को पार कर गए थे। दुबले-पतले, कोई ढाई माशे के लखनवी आदमी थे। रंग पक्का, खोपड़ी गंजी, आंखों में मोटे शीशे का चश्मा, खाने-पीने और कपड़े-लत्तों से असावधान, मगर पक्के पियक्कड़। धुन के पक्के और सनकी।

दो रानियां जिन्दा हाजिर थीं। एक सही मानों में धर्मपत्नी। जो सिर्फ महलों में धरी रहती थीं। दूसरी तीखी समालोचक, विदुषी और डिक्टेटर।

मेरे राजा साहब से अनेक नाते थे। मैं उनका चिकित्सक तो था ही, मित्र भी था! वे मेरा विश्वास करते थे, दिल खोलकर बात करते थे। अनेक बार मैंने उनके प्राणों की रक्षा की थी, प्रतिष्ठा की भी। बहुत बार राजा साहब के आंसू मैंने देखे थे। मेरे सम्मुख राजा साहब वास्तव में एक निरीह व्यक्ति थे। राजा नहीं।

साल में 2-3 दौरे रियासत में लग ही जाते थे। परन्तु इस बार व्यस्त रहने से कुछ देर में जाना हुआ। जाकर देखा, सर्दी से बचने के लिए राजा साहब रजाई में लिपटे हुए अंगीठी ताप रहे हैं—पास बैठी है मुहब्बत। वह

मुहब्बत नहीं जो पिछले साल देखी थी—हुज़ूर कहकर पुकारने वाली, झुककर सलाम करने वाली। यह तो दानी की गुण-गरिमा से पूर्ण स्त्री थी। उसकी आंखों में गर्व और बातचीत में रानीपन की साफ झलक थी। मैं सुन चुका था कि महाराज के आदेश से कुंवर साहबान उसकी ताज़ीम करते हैं, राजवधू उसे अभ्युत्थान देती हैं। सुनकर ही मेरा मन विद्रोह से सुलग उठा। और जब मेरे वहां पहुंचने पर उसने मुझे ताज़ीम नहीं दी, उल्टे मुझी से ताज़ीम चाही तो मैंने उस औरत की तरफ से एकबारगी ही मुंह फेर लिया। मैं उसकी ओर बिना ही देखे राजा साहब से बातें करने लगा।

राजा साहब ने देखा। देखकर मुस्कराए। मुस्कराकर कहा—पहचाना नहीं।

मैंने आश्चर्य का नाट्य करते हुए कहा—नहीं महाराज !

"मुहब्बत है"—सरल आंखों से उसकी ओर ताकते हुए उन्होंने कहा।

मैंने कहा—ओफ, बिलकुल ही सूखकर खुश्क हो गई !

राजा साहब ने आंखें मेरी ओर उठाकर कहा—कौन ?

"मुहब्बत महाराज !" मैंने थोड़े दर्द से कहा। महाराज एकदम खिलखिलाकर हंस पड़े, बोले—इतनी मोटी तो हो रही है। आप कहते हैं सूख गई।

मैंने आंखें नीचे करके रूखे स्वर में कहा—महाराज शायद खातून का ज़िक्र कर रहे हैं ? परन्तु मैंने महाराज से मुहब्बत की बाबत अर्ज़ की ?

"खूब हैं आप !" राजा साहब हंसकर बोले—मुहब्बत को मुहब्बत से जुदा करते हैं आप। खैर, अब यह देखिए कि इनका मिज़ाज कैसा है ? इस बार तो मैंने इन्हीं के लिए आपको कष्ट दिया है।

अपनी अप्रसन्नता को मैंने छिपाया नहीं। थोड़ा रूखे स्वर में मैंने कहा—महाराज ने इतनी-सी बात के लिए नाहक तकलीफ दी। रियासत के डाक्टर या नर्स क्या इतना भी नहीं कर सकते ?

मेरा जवाब राजा साहब को पसन्द नहीं आया। उनका चेहरा उदास हो गया, परन्तु प्रथम इसके वे कुछ कहें मैं उठ खड़ा हुआ। मैंने मुहब्बत से कहा—दूसरे कमरे में चलो देखूं, क्या बात है।

स्पष्ट था कि वह मेरी भावना को ताड़ गई। उसकी त्योरियों में बल पड़ गए। जब मैं उसकी परीक्षा कर चुका और चलने लगा तो उसने कहा—कड़वी दवा मत दीजिए। नहीं खा सकूंगी।

मैंने उलटकर देखा। मेरी आंखें जलने लगीं।

मैंने कहा—क्यों ?

"मैं कड़वी दवा नहीं खा सकूंगी।"

मैंने जवाब नहीं दिया। गहरी विरक्ति और कुत्सा से मेरा मन भर गया।

"आप स्थानीय डाक्टर को ज़रा बुला लीजिए, मैं उन्हें समझा दूंगा। इनकी चिकित्सा-व्यवस्था हो जाएगी।"

और इस प्रकार, डाक्टर साहब का चरण अन्तःपुर में पड़ा। नवयुवक थे। गौर वर्ण था, गोल मुंह और गोल ही आंखें। हर समय हंसकर बातें करना उनका स्वभाव था। जब मेरे ही सामने उन्होंने उस औरत को 'हुज़ूर' कहकर पुकारा तो उस औरत ने साभिप्राय मेरी ओर ताका। उस ताकने का अभिप्राय यह था देखा, इस तरह बोलना चाहिए।

रियासती व्यवस्था बड़ी विचित्र होती है। अन्तःपुर के उस द्वार पर रात-दिन संगीन का पहरा रहता था। कोई पक्षी भी वहां पर नहीं मार सकता था। परन्तु डाक्टर के लिए रोक न थी। डाक्टर को देखते ही संतरी बन्दूक नीचे करके द्वार छोड़कर हट जाता था और डाक्टर एक मुस्कान उसपर फेंककर ऊपर चढ़ जाते। कक्ष में अकेली मुहब्बत और राजा साहब। तबीयत दोनों की खराब।

सर्दी के दिन थे। राजा साहब सुबह ही से धूप तापने को तिमंज़िली छत पर आरामकुर्सी पर जा पड़ते। वहीं से वे पान कचरते रहते। तेल की मालिश होती रहती। कभी-कभी सो भी जाते। मुहब्बत बहुत कम ऊपर चढ़ती थी। टांगों में दर्द था। सीढ़ियां नहीं चढ़ सकती थी। राजा साहब प्रायः दिन-दिन-भर छत पर पड़े रहते और मुहब्बत दिन-दिन-भर अपने कमरे में अकेली।

डाक्टर नित्य आते। पहले देखते मुहब्बत को, फिर ऊपर जाकर राजा साहब को। नीचे उतरकर फिर मुहब्बत से बात करते। बात किस ढंग पर, किस मज़मून की होती थी, इसका तीसरा साक्षी था शारदीय वातावरण, एकान्त एकाकी मिलन, वेश्या और वेश्या की पुत्री। राजा बूढ़े, शराबी, सनकी और रोगी तथा गैरहाज़िर। डाक्टर को प्रवेश की स्वतन्त्रता, एकान्त सहवास की स्वतन्त्रता, और चाहे जब तक भीतर रहने की स्वतन्त्रता; एक चमड़े का हैंडबैग हाथ में ले जाने और ले आने की स्वतंत्रता। इन सबने घुलमिलकर उस पेशेपन्थी डाक्टर और उस पेशेवर वेश्या को एकसूत्र में बांध दिया। पहले प्रेमोदय हुआ, फिर प्रेमालाप।

अब दोनों एक थे, पाप और नमकहरामी से भरपूर। निरीह मालिक से विश्वासघात करने को तैयार। कुछ दिन संकेतवार्ता चली। फिर एक दिन खुल कर बातचीत हुई।

डाक्टर ने कहा—मुहब्बत, इस तरह कब तक चलेगा ?

"यही मैं कहती हूं।"

"तब ?"

"चलो कहीं भाग चलें।"

"एक दिन अवसर पाकर मुहब्बत ने कहा—एक बात कहती हूं।

"कहो।"

"किसीसे कहोगे तो नहीं ?"

"नहीं।"

"ज़िन्दा न रहने पाओगे।"

"तो साथ ही मरेंगे। तुम बात कहो।"

"वह सेफ देख रहे हो ?"

"देख रहा हूं।"

"उसमें नोटों के गठ्ठर भरे पड़े हैं।"

"अच्छा, तुमने देखा ?"

"देखा।"

"लेकिन खज़ाना तो नीचे पहरे में है।"

"यह महाराज का प्राइवेट पर्स है।"

"अच्छा, कितना रुपया है ?"

"कल गिना था, 5 लाख के नोट हैं।"

"सच !"

"एक मोतियों की माला है, कहते थे एक लाख की है।"

"अच्छा !"

"एक हीरे की कलगी है, डेढ़ लाख की है।"

"अरे !"

"और मुट्ठी-भर जवाहर-हीरे-मोती हैं।"

"भई राजा का घर है, राजा के घर में मोतियों का अकाल ?"

"सुनो !"

"क्या ?"

"मैं वह सेफ खोल सकती हूं।"

"अरे ! किस तरह ?"

'एक तरकीब है। मुझे मालूम है।" उसने इधर-उधर देखा। डाक्टर ने कहा—"क्या चाबी हथिया ली है"

"नहीं, हरूफ उलट-पलट होते हैं। कल राजा साहब ने मुझे बताए।"

डाक्टर ने अपने को संयत करके कहा —

"मुहब्बत, तुम जानती हो, मैं तुम्हें कितना चाहता हूं।"

"खूब जानती हूं !" मुहब्बत ने मुस्कराकर कहा।

"फिर यह दौलत अपनी होनी चाहिए। अभी उम्र बहुत काटनी है और तुम तो बिल्कुल नौजवान हो। इस मुर्दे राजा के पास जैसे कब्र में दफना दी गईं। इस दौलत को हथियाकर तो तुम रानी बन सकती हो, सच्ची रानी !"

"ऐसा करना खतरे से खाली नहीं है।"

"लेकिन इस दौलत को यहीं छोड़ जाओगी।"

"तो क्या जेल काटूंगी ?"

"जेल बेवकूफ काटते हैं।"

"मैं पक्की बेवकूफ हूं।"

"लेकिन मैं ज़रा भी बेवकूफ नहीं।"

"तो तुम यह दौलत लूट लेना चाहते हो ?"

"पहले एक बात बताओ।"

"क्या ?"

"इस सेफ की बात किसी को मालूम है ?"

"सेफ को तो सभी ने देखा है।"

"नहीं। रकम।"

"न। किसी को नहीं मालूम।"

"क्या कुंवर साहब को भी नहीं ?"

"नहीं। उन्हीं से छिपाकर तो यह रकम और जवाहरात रखे गए हैं।"

"किसलिए ?"

"हविश। जवाहरात तो सब रानी साहिबा के हैं।"

"उन्हें मालूम है ?"

"नहीं।"

"ठीक कहती हो ?"

"परसों स्वयं राजा साहब ने कहा था। इस रकम की कभी किसी के सामने चर्चा भी न करना।"

"और तुम्हें उन्होंने ताला खोलना, बन्द करना भी बता दिया ?"

"दो-एक बार देखा, मैं समझ गई।"

"क्या राजा जानता है कि तुम इसे खोल सकती हो ?"

"नहीं। मैंने कल ज्यों ही मजाक से हाथ लगाया था, सेफ खुल गया।"

"तो यह हमारा-तुम्हारा भाग्य है, मुहब्बत, मेरे-तुम्हारे बीच ईमान

है। मेरी गंगा, तुम्हारा कुरान।"

"कसम खाओ।"

"खाई भई!"

"कल से चारपाई पर पड़ जाओ; मैं रोज़ आऊंगा, खाली बैग लेकर। और जितना उसमें समा सकेगा, भर ले जाऊंगा। राजा साहब कब ऊपर जाते हैं?"

"चाय-पानी पीकर नौ बजे।"

"मैं दस बजे आऊंगा।"

"लेकिन राजा यदि कभी सेफ खोले?"

"हमें सिर्फ एक हफ्ता लगेगा।"

"इसी हफ्ते में यदि बात खुल गई?"

डाक्टर की आंखों में चमक आई उसने मुहब्बत का हाथ कसकर पकड़ा और कहा—एक हफ्ते में भी नहीं और उसके बाद भी कभी नहीं। एक काम कर सकोगी?

"क्या?"

"चाय के साथ···" डाक्टर की जबान लड़खड़ाई। मुहब्बत ने घबराकर कहा—न भई, यह काम मुझसे न हो सकेगा।

"बेवकूफी मत करो, मैं डाक्टर हूं, अनाड़ी नहीं। शक-शुबा किसीको न होगा। काम ऐसी सफाई से होगा।"

"अरे बाबा, फांसी पड़ेगी, फांसी।"

"क्या बातें करती हो, मुहब्बत! सिर्फ दो कतरे चाय में डाल दो। चाय तो तुम्हीं बनाती हो?"

"हां, परन्तु उससे क्या होगा? क्या यह ज़हर है।"

"ज़हर तो है लेकिन राजा इससे मरेंगे नहीं। सिर्फ बदहवास हो जाएंगे। उनका दिमाग फेल हो जाएगा।"

"इसके बाद?"

"इसके बाद हमारे लिए अवसर ही अवसर है।"

चतुर डाक्टर ने उस औरत को हिम्मत कायम करने का अवसर दिया और तेज़ी से चल दिया। मुहब्बत एकदम मसनद पर से उठ गई।

राजा साहब यों तो हमेशा ही किसी न किसी शाही बीमारी से मुब्तिला रहते थे। कभी सर्दी, कभी जुकाम; कभी कुछ, कभी कुछ। मगर यह तो उनकी तन्दुरुस्ती के ही अन्तर्गत था। आज एकाएक उनकी तबीयत में परिवर्तन-सा लगा। वे ऊपर धूप में जाने लगे तो सीढ़ियों पर लड़खड़ा-

कर गिरकर उठे। ऊपर जाकर आराम कुर्सी पर बदहवास से पड़ गए।

डाक्टर आया। महाराज को बारीकी से देखा और कहा—रात ज़्यादा ड्रिन्क किया गया प्रतीत होता है। आराम फर्माने से कल तक सब ठीक हो जाएगा। उन्होंने राजा साहब के लिए नुसखा लिखा और भी हिदायतें लिखीं। राजा साहब ने जैसे नींद से जागकर कहा—मुहब्बत को भी देखते जाइए, कैसी है।

"देखता जाऊंगा, सरकार !"

वे नीचे उतरे। आंखों ही में बातें हुईं। मुहब्बत ने कहा—

"हम मारे जाएंगे, डाक्टर साहब !"

"फिक्र मत करो, हिम्मत रखो।"

"लेकिन मैं यह काम नहीं कर सकती। आज यह दवा मैं नहीं दूंगी।"

"तो मैं कहूंगा कि मुहब्बत ने राजा साहब को ज़हर दिया है। जानती हो मैं डाक्टर हूं, चाहूं तो अभी आधे घंटे में हथकड़ियां डलवा दूंगा !" डाक्टर की आंखों में प्रतिहिंसा व्यक्त हो उठी।

मुहब्बत ने क्रुद्ध होकर कहा—तुम भी नहीं बचोगे डाक्टर; मैं कहूंगी तुमने ही ज़हर लाकर दिया था।

डाक्टर ने हंसकर कहा—ऐसा कहते ही यह साबित हो जाएगा कि तुमने ज़हर दिया। अब तुम्हें यह साबित करना रह जाएगा कि डाक्टर ने दिया। वह तुम कैसे साबित करोगी ?

मुहब्बत ने आंखों में आंसू भरकर कहा—डाक्टर, रहम करो ! मैं बदनसीब औरत हूं।

"तो मैं जो कहता हूं करो। वह सेफ खोलो, जितनी रकम इस बैग में आती है, भर दो। मैं तब तक बाहर देखता हूं कोई आता तो नहीं। मगर पहले सारी ज्वैलरी बैग में रख दो। डाक्टर ने बाहर की ओर मुंह फेरा, और मुहब्बत ने कांपते हाथों से सेफ को छुआ। लाखों रुपयों की ज्वैलरी और नोट डाक्टर के बैग में भरकर जब मुहब्बत ने डाक्टर के हाथ में बैग दिया तो सूखे मुंह से उसकी ओर देखकर कहा—और आप डाक्टर, मेरे साथ दगा न करोगे, सब हज़म न कर जाओगे, इसी का क्या भरोसा है ?"

एक कुटिल हास्य लाकर डाक्टर ने कहा—इत्मीनान रखो मुहब्बत हमारी-तुम्हारी मुहब्बत इसके बीच में है। एक प्रकार से बैग उसने झपट लिया। मुहब्बत ने कहा—और गंगा और कुरान ?

"हां, हां वह भी। लो आज की खुराक"—डाक्टर ने एक छोटी-सी पुड़िया उसकी ठण्डी बर्फ-सी उंगलियों में पकड़ा दी। डाक्टर चला गया और मुहब्बत मूर्छित-सी होकर ज़मीन पर गिर गई।

राजा साहब की हालत बहुत बदतर हो गई। उनमें सर्वथा ज्ञान का लोप हो गया। बदहवासी में वे अंटशंट बकने लगे। होंठ उनके काले और आंखें लाल हो गईं। अपने दोनों हाथों की उंगलियों से वे कुछ ताने-बाने से बुनने लगे। खाना-पीना समाप्त हो गया। गर्म पानी में घोलकर मीठी शराब देने से उन्हें कुछ चैतन्य आता था। मुहब्बत और डाक्टर ने राजा साहब की सेवा में दिन-रात एक कर दिया। रियासत-भर में मुहब्बत एक आदर्श सती स्त्री की भांति प्रशंसित हो गई—कलिकाल में मुसलमान वेश्या होकर ऐसी सेवा-परायणा स्त्री भला कहां मिल सकती है? और डाक्टर ने तो सतयुग का उदाहरण उपस्थित कर दिया।

रात-रात-भर जब सब नौकर-चाकर, परिजन थक जाते, ये दोनों ही राजा की सेवा में जागते रहते—उन्हें निर्विघ्न-सन्देहरहित मृत्यु के द्वार तक अत्यन्त सफलता से पहुंचाते जाते थे।

सेफ खाली हो चुका था। और अब मुमूर्षु रोगी के पास आंखों और इंगितों में इन दोनों व्यक्तियों की जो बातचीत होती उसका मूल विषय होता वह धन जो चुरा लिया गया था और अब डाक्टर के पेट में पहुंच चुका था। मुहब्बत घबराकर सूखे होंठों से कहती—देखना, दगा न करना, तुम्हारे विश्वास पर यह सब किया है। डाक्टर आंखों में ही जवाब देते—इत्मीनान रखो, सब ठीक हो जाएगा।

परन्तु जब राजा साहब की अवस्था सांघातिक रूप धारण कर गई तो डाक्टर ने कुंवर साहब से कहा—अब तो मेरे बूते की बात रही नहीं है, किसी बड़े डाक्टर की सहायता की आवश्यकता है। कल न जाने क्या हो जाए तो मेरा मुंह काला होगा। मैं तो जो सेवा करनी थी, कर चुका।

भला डाक्टर की सेवा में सन्देह किसे था?

राजा साहब को सदर शहर में अस्पताल ले जाया गया। वहां अनेक धुरंधर डाक्टर उनकी देखभाल करने लगे। परन्तु रोग का कारण किसीकी समझ में नहीं आ रहा था। रोग बढ़ता जा रहा था। और अब राजा साहब की किसी भी क्षण बेहोशी की हालत में मृत्यु हो सकती थी। काशी की पण्डित-मण्डली शिव मन्दिर में नवार्णव के सम्पुट से मृत्युञ्जय मन्त्र का पाठ कर रही थी। देश-देश के ज्योतिषी क्षण-क्षण पर क्रूर ग्रहों की गतिविधि देख रहे थे। गतिविधि ठीक-ठीक नहीं देखी जा सकी थी तो केवल डाक्टर और मुहब्बत की, जो इस निर्मम हत्या, विश्वासघात और उनके प्रधान अभियुक्त थे।

डाक्टर हताश हुए तो एक दिन पश्चात् कुंवर साहब ने मेरा ध्यान किया। ज़रा-सी ही बात पर राजा साहब मुझे बुला भेजते थे। अब इतना

बड़ा काण्ड हो गया और मुझे नहीं बुलाया गया। कुंवर साहब के प्रस्ताव का डाक्टर और मुहब्बत दोनों ने ही विरोध किया। डाक्टर ने कहा—इतने बड़े चिकित्सक हार बैठे, वे आकर अब क्या करेंगे ? कुंवर साहब ने कहा—माना कुछ न करेंगे। होनहार होकर रहेगा। पर अपने मित्र को देख तो लेंगे। मुझे सूचना भेज दी गई।

आकर देखा, अभागा राजा बिछौने पर असहायावस्था में पड़ा है। आंखें आधी बन्द। आक्सीजन गैस से श्वास लेता हुआ दोनों हाथों की उंगलियां जैसे किसी सूत के धागे को लपेट रही थीं। आंखों का रंग लाल अंगारा, टेम्प्रेचर बिल्कुल नहीं, गुर्दों का काम बन्द, दिल की धड़कन किसी भी क्षण धोखा देने वाली।

सब कुछ देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। और जब मैंने सुना कि पूरे ग्यारह दिन से ऐसा है तब तो मेरा मन सन्देह और आशंकाओं से भर गया।

हर दूसरे घण्टे पर डाक्टर रोगी को संभाल रहे थे। मेरी अवाई सुनते ही वे दौड़े आए और शुरू से आखीर तक रोग का इतिहास सुनाने लगे। एक-दो सम्बन्धी राजा उपस्थित थे। बहुएं, पुत्र, परिजन सभी थे। डाक्टर रोग-विवरण सुना रहा था। बीच-बीच में अनावश्यक हास उनके होंठों पर आ जाता था। मेरा सन्देह निश्चय में बदल रहा था। बीच में रोककर मैंने पूछा—ठहरिए, टेम्प्रेचर-चार्ट कहां है, देखूं ?

डाक्टर का मुंह सूख गया। उसने कहा—टेम्प्रेचर-चार्ट तो हमने बनाया ही नहीं।

"क्यों ?" मैंने खूब कड़ाई से प्रश्न किया।

डाक्टर ने हकलाते हुए कहा—टेम्प्रेचर राइज़ ही नहीं हुआ।

"तो बिना ही टेम्प्रेचर के ये डिलीरियम के सांघातिक आसार उत्पन्न हो गए ?"

"जी हां, जी हां,"—डाक्टर ने थूक सटककर हंसने की कोशिश की।

मैंने कहा—और आपने इधर ध्यान नहीं दिया ?

"दिया साहब, मैंने···"

मैं संयत न रह सका। गरजकर मैंने कहा—डाक्टर, यह सरासर खून का केस है, मुझे मुनासिब है कि पुलिस को इत्तला दूं। मैं तेज़ी से कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। मुहब्बत चीख मारकर बेहोश हो गई। डाक्टर मुर्दे की भांति ज़र्द पड़ गया। जूड़ीग्रस्त पुरुष की भांति वह कांपने लगा।

इसी समय राजा ने आंखें खोलीं। उनकी वह दृष्टि स्वाभाविक थी। मैं लपककर उनके पास गया। दोनों हाथों में उनका हाथ लेकर कहा—

महाराज, साहस मत खोइए, आपकी जो इच्छा हो, कहिए। उन्होंने इधर-उधर आंखें घुमाईं। क्षीण स्वर में कहा—बड़े···

तुरन्त ही बड़े कुंवर ने उनकी गोद में सिर डाल दिया। राजा की आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। मैंने नाड़ी, दिल की धड़कन देखी। भीड़ को तुरन्त हटाया। राजा साहब ने मुंह खोल दिया। मैंने कहा—गंगाजल दीजिए। दो तुलसीदल डालकर एक घूंट गंगाजल उनके मुंह में डाल दिया गया। जल कण्ठ में गया और प्राण नश्वर शरीर से पृथक् हुआ।

उस रियासत में मेरा काम और मेरे सम्बन्ध सब समाप्त हो चुके थे। फिर भी जिस दिन नये राजा को पगड़ी बंधी मुझे हाज़िर होना पड़ा। नये राजा नवयुवक, भावुक और दुबले-पतले लजीले से थे। सब कृत्य समाप्त होने पर जब मैं एकान्त में मिला तो बातें हुईं। मैंने कहा—

"उस मामले में आपने कुछ किया ?"

"क्या आपको कुछ मालूम था ?"

"मैं निश्चित रूप से सिद्ध कर सकता हूं कि यह अत्यन्त सावधानी-पूर्वक किया गया खून था।"

"परन्तु किसी भी डाक्टर ने ऐसा नहीं कहा ?"

"कैसे कहा जा सकता था, खूनी डाक्टर है। सब कार्य बहुत वैज्ञानिक रीति से हुआ। सन्देह की कोई भी गुंजाइश न थी। मुझे तो केवल एक सूत्र मिल गया, नहीं तो मैं भी न जान सकता।"

"पर अब तो उन्होंने सब कुछ बता दिया है।" उनका मतलब मुहब्बत से था।

"सब कुछ ?"

"जी, डाके का हाल आप सुन चुके होंगे ?"

"नहीं तो, डाका कैसा ?"

इसपर नये राजा ने सारा विवरण बताया। मुहब्बत ने राई-रत्ती सब बता दिया था।

मैंने कहा—आपने मामला पुलिस में नहीं दिया ?

"कैसे दे सकता था, वे वेश्या अवश्य हैं पर मेरे पिता ने उन्हें मेरी माता के स्थान पर रखा था। उनके विरुद्ध कुछ भी करना मेरे लिए अशक्य था। यह मेरे खानदान की प्रतिष्ठा और मर्यादा का प्रश्न था।"

"किन्तु दस लाख का डाका और राजपुरुष की जान"—मैंने धीरे से कहा।

युवक राजा ने आंखों की कोर से आंसू पोंछा। बहुत देर हम चुप बैठे

रहे। फिर मैंने कहा—रुपया मिलने की कुछ उम्मीद है ?

"नहीं।"

"सब क्या डाक्टर लूट ले गया ? मुहब्बत को कुछ नहीं दिया ?"

"नहीं।"

"डाक्टर कहां है ?"

"छुट्टी ली है, शायद तबादला भी करा रहा है।"

"और मुहब्बत ?"

"वे यहीं हैं।"

"क्या मैं मिल सकता हूं ?"

नये राजा ने देखकर कहा—क्षमा कीजिए। वे बाहर नहीं आती हैं। महल में हैं। युवक राजा की शालीनता अद्भुत थी। मैंने कहा—राजा मर गया, आप चिरंजीव रहें।

और मैं उठकर चला गया।

राजा साहब की कुतिया

यह भी ऐसी ही कहानी है। राजा-रईसों की सनक, भड़क और हिमाकत का अच्छा दिग्दर्शन इस कहानी में है।

•

जी हां, हिन्दुस्तान की आज़ादी और मेरी बर्बादी एक ही साथ हुई। संयोग की बात है—बस, एक ज़रा-सी चूक ने तकदीर का बेड़ा गर्क कर दिया। अब आप जब सुनने पर आमादा हैं तो पूरा किस्सा ही सुन लीजिए।

आप तो जानते ही हैं कि एल-एल० बी० पास करके पूरे तीन साल अदालत की धूल फांकी। किसी भी बात की कोर-कसर नहीं रक्खी। चालाक से चालाक मुन्शी रक्खे, बीवी के सारे जेवर बेच-बेचकर मोटी-मोटी कानून की किताबें खरीदीं। बढ़िया से बढ़िया सूट सिलवाए। हमेशा बड़े वकीलों का ठाठ रक्खा, पर कम्बख्त वकालत को न चलना था—न चली। जी हां, कमाल ही हो गया। ठीक वक्त पर कचहरी जाता। हर अदालत में चक्कर काटता। एक-एक मुवक्किल को ताकता, भांपता। एक-एक कानूनी पाइण्ट पर दस-दस नज़ीरें पेश करता, मगर बेकार। मुवक्किल थे कि दूर ही से कतरा जाते। एक से बढ़कर एक नामाकूल-घनचक्कर घिसे-घिसाए वकील तो मज़े-मज़े जेब गर्म करके मूंछों पर ताव देते घर लौटते; और बन्दा छूछे हाथ आता। ये सब तकदीर के खेल हैं, साहब, दुनिया में लियाकत की कद्र ही नहीं है। अन्धी दुनिया है, भेड़ियाधसान है। बस तकदीर जिसकी सीधी उसीके पौबारह हैं। अन्त के तन्त मैं वकालत को धता बता राजा साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी हो गया।

जी हां, कह तो रहा हूं—प्राइवेट सेक्रेटरी। यकीन कीजिए। मैं आपको एम्प्लायमेंट-लेटर भी दिखा सकता हूं। अर्ज़ करता हूं कि पूरे सात महीने और सत्ताईस दिन वह चैन की बंसी बजाई कि जिसका नाम ! यानी महीने में पूरी तनख्वाह, बढ़िया खाना, कोठी बंगला। पान, सिग्रेट-सिनेमा और दोस्त-मेहमानों का खर्चा फोकट में। बस ज़रा-सी चूक ने सब चौपट कर दिया।

मिस ज़ुबेदा ? जी हां, यही नाम था उसका। राजा साहब ने मुझे ज़ुबेदा ही की नौकरी पर बहाल किया था। बस समझ लीजिए—ज़ुबेदा का ट्यूटर, गार्जियन, प्राइवेट सेक्रेटरी सब कुछ मैं ही था। राजा साहब

उसे बेहद प्यार करते थे। जब मुझे नौकरी पर बहाल किया तो उन्होंने कहा था—बरखुरदार, ज़ुबेदा को तुम्हारी निगरानी में सौंपकर मैं बेफिक्र हुआ। लेकिन खबरदार, तुम एक लमहे के लिए भी बेफिक्र न होना। नज़र कड़ी रखना और दिल नर्म। ज़ुबेदा कमसिन है, बेसमझ है—मिज़ाज उसका नाज़ुक है। वह बहुत ऊंचे खानदान की औलाद है; ऐसा न हो आवारा हो जाए, या उसकी आदतें बिगड़ जाएं। ज़ुबेदा मुझसे जल्द हिल-मिल गई। और मैं भी उसे प्यार करने लगा। बस, मैं अपनी नौकरी पर खुश था। और नौकरी मेरी रास पर चढ़ गई थी। राजा साहब जिद्दी और झक्की परले सिरे के थे। पुराने ज़माने के खानदानी रईस थे। हमेशा कर्ज़े से लदे रहते, फिर भी सभी तरह की लन्तरानियां लगी ही रहती थीं। कर्ज़ा और लन्तरानियां साथ-साथ न चलें तो रईस ही क्या? उम्र साठ को पार कर गई थी। भारी-भरकम तीन मन का शरीर, बड़ा रुआबदार चेहरा, शेर की दहाड़ जैसी आवाज़, लाल-लाल आंखें! किसकी मज़ाल थी कि उनकी आंखों से आंखें मिलाए। बात-बात में शान। पीते भी खूब थे, मगर अकेले। किसी को साथ बैठाना शान के खिलाफ समझते थे। तीन-चार पैग चढ़ाने के बाद जब सवारी गठ जाती तब उनकी दहाड़ से कोठी दहलने लगती थी। उस समय ज़ुबेदा को छोड़कर और किसी की मजाल न थी जो उनके पास फटके।

गर्मी की मुसीबत से बचने के लिए राजा साहब मसूरी की अपनी कोठी में मुकीब थे। बहुत भारी कोठी थी। सुबह का वक्त था। रात बूंदाबांदी हुई थी। ठण्डी हवा चल रही थी। मौसम सुहावना था। और राजा साहब खुश थे। वे हाथ में एक पतली छड़ी लिए कमरे में टहल रहे थे। एक खिदमतगार पानदान और दूसरा उगालदान लिए अलग-बगल चल रहा था। दो लठैत पीछे। क्षण-क्षण पान खाना और उगालदान में पीक डालना उनकी आदत थी। ज़ुबेदा उनके साथ थी और उसकी अर्दली में अपनी ड्यूटी पर मुस्तैद मैं भी हाज़िर था। ज़ुबेदा चुहल करती, कभी आगे कभी पीछे चक्कर खाती चली जा रही थी। राजा साहब देखकर खुश हो रहे थे। सच पूछिए तो ज़ुबेदा को वे जान से बढ़कर चाहते थे।

असल में ज़ुबेदा एक बहुत ही उम्दा नस्ल की नाज़ुक विलायती कुतिया थी और राजा साहब ने गत वर्ष उसे मसूरी ही में पन्द्रह सौ रुपयों में खरीदा था।

अभी फाटक मुश्किल से कोई चालीस-पचास कदम था कि एक बुल-डाग फाटक में घुस आया। उसे देखते ही ज़ुबेदा बेतहाशा उसकी ओर भाग

चली। राजा साहब एकदम बौखला उठे। वे पागल की तरह, 'पकड़ो-पकड़ो' चिल्लाते उसके पीछे भागे। उनके पीछे ज़ुबेदा का प्राइवेट सेक्रेटरी मैं, और मेरे साथ लठैत, खिदमतगार अगल-बगल। जिनकी राजा साहब पर नज़र पड़ी और जिसने उनकी ललकार सुनी, भाग चला। कोठी में हड़बोंग मच गया।

फाटक पर जाकर राजा साहब हांफते-हांफते बदहवास होकर गिर गए। और हम लोगों को मीलों का चक्कर लगाना पड़ा। खुदा की मार इस ज़ुबेदा की बच्ची पर! भागते-भागते कलेजा मुंह को आने लगा। पतलून चौपट हो गई। नया जूता बर्बाद हो गया। आखिर ज़ुबेदा और जिम दोनों पकड़े गए। और उन्हें खूब मुस्तैदी से बांध दिया गया।

खुशखबरी सुनाने जब मैं राजा साहब के कमरे में पहुंचा तो वे बफरे हुए शेर की तरह दहाड़ रहे थे—सब खिदमतगार, लठैत, नौकर हाथ बांधे चुप खड़े थे। राजा साहब कह रहे थे—सबको गोली से उड़ा दूंगा। नामाकूल! मर्दूद!! मेरे पहुंचने पर वे लाल-लाल आंखों से मुझे घूरने लगे। मैंने डरते-डरते हाथ जोड़कर कहा—सरकार, दोनों को पकड़ लिया है।

"बांधा उनको?"

"जी हुज़ूर!"

"अलग-अलग?"

"जी सरकार!"

"यही मुनासिब सज़ा है, लेकिन उस आवारा कुत्ते की ज़ुर्रत तो देखो। मुझे हैरत है। क्या तुम ज़ुबेदा की खानदानी इज़्ज़त जानते हो?"

मैंने कहा—जी हां, हुज़ूर ने उसे पन्द्रह सौ रुपये में खरीद लिया था।

"बेहूदा बकते हो, खरीद किया क्या माने? पन्द्रह सौ रुपया क्या ज़ुबेदा की कीमत हो सकती है?"

"जी नहीं सरकार!"

"तो फिर?" राजा साहब ने आंखें तरेरकर मेरी ओर देखा।

इस 'तो फिर' का क्या जवाब दूं, यह समझ ही न सका। हाथ बांधे खड़ा रहा। इसी समय एक खिदमतगार घबराया हुआ दौड़ता आया। आकर उसने राजा साहब से कहा—सरकार, माधोगंज की कोठी का प्यादा हाथ में लट्ठ लिए फाटक पर खड़ा है। बह कहता है—खैरियत इसी में है कि 'जिम' को खोल दीजिए, वरना हंगामा मच जाएगा।

राजा साहब ने तैश में आकर कहा—ऐसा नहीं हो सकता। माधोगंज वालों से जो करते बने करें।

लेकिन माधोगंज की कोठी का प्यादा खुद ही भीतर घुस आया। उसने खूब झुककर राजा साहब को सलाम किया और हाथ बांधकर अर्ज़ की—हुज़ूर ! खुद बड़े सरकार ने मुझे भेजा है, उन्हें बहुत रंज है। लेकिन सरकार अब हुक्म हो जाए कि कुत्ता खोलकर मेरे हवाले कर दिया जाए। बड़े सरकार बड़े गुस्सैल हैं, धुन पर चढ़ गए तो नाहक कोई खून हो जाएगा।

राजा साहब गरज पड़े—क्या कहा, खून हो जाएगा ? बढ़कर बोलता है। नामाकूल, मर्दूद ! अच्छा ले। यह कहकर उन्होंने खूब चिल्लाकर अपने लठैतों को पुकारा—माधो, दीपा, रामू, गुल्लू, किसना !

परन्तु लठैतों के स्थान पर आ खड़े हुए माधोगंज के राजा साहब रामधारीसिंह। साठ साल की उम्र, लम्बा कद, हाथ में बढ़िया छड़ी, बदन पर पूरी रियासती पोशाक। उन्होंने एकदम राजा साहब के सामने पहुंचकर कहा—यह आपकी सरासर ज़्यादती है राजा साहब, कि आप अपने नौकरों की बेजा हरकत पर उन्हें शह देते हैं। आपका लिहाज़ करता हूं—वरना एक-एक की खाल खिंचवा लूं। बहुत हुआ, अब जिम को मेरे हवाले कीजिए।

राजा साहब ने बुलडाग की भांति गुर्राकर कहा—क्या खूब ! यह दम-खम और शान ? आप मेरे आदमियों की खाल खींच लेंगे ! गोया आप ही उनके मालिक हैं। चोरी और सीना-ज़ोरी !

"लेकिन चोरी की किसने ?"

"जिम ने। ट्रेसपास, एकदम क्रिमिनल ट्रेसपास !"

"आप ज़्यादती कर रहे हैं राजा साहब ! इसका नतीजा अच्छा न होगा। याद रखिए, खूनखराबी की नौबत आई तो इसके ज़िम्मेदार आप ही होंगे।"

"तो आप हमें धमकी दे रहे हैं ? सरीहन वह आवारा कुत्ता कोठी में घुस आया और मेरी ज़ुबेदा को भगा ले गया। इस ज़ुल्म को तो देखिए।"

"कमाल करते हैं आप राजा साहब ! जिसको आप आवारा कहते हैं, क्या आप नहीं जानते कि बहुत मुद्दत की खोज के बाद जिम को मैंने जनाब गवर्नर साहब बहादुर से सौगात में पाया था ?"

"क्यों नहीं, जनाब गवर्नर साहब से तो आपकी पुश्तैनी रसाई है। जाइए, कुत्ता नहीं खोला जाएगा।"

"अच्छी नादिरशाही है। यह आप हमारी खानदानी तौहीन कर रहे हैं।"

"खूब-खूब, गोया आप भी खानदानी रईस हैं। दो दिन की ज़मींदारी को चोरी-चकारी से बढ़ाकर और बनियागिरी से चार पैसे जोड़ लिए सो

आप हो गए खानदानी रईस ! कमाल हो गया। और हम जो बहादुरशाह के ज़माने से रईस न चले आ रहे हैं, सो ? आपका कुत्ता हमारी खानदानी कुतिया से आशनाई करेगा। ऍं यह हिमाकत !''

"रस्सी जल गई ऐंठन बाकी है। बाल-बाल तो कर्ज़ में बिंधे पड़े हैं, आप खानदानी रईस बनते हैं। राजा साहब, होश की लीजिए, चोरी और डाकेबाज़ी के जुर्म में सारे खानदान को न बंधवा लूं तो रामधारी नाम नहीं। आप हैं किस फेर में ?

"आख्खा, तो यह भी देख लिया जाएगा। कर देखिए आप। नया रुपया है, उछलेगा तो ज़रूर ही। लेकिन मैं कहे देता हूं, लन्दन से बैरिस्टर बुलाऊंगा लन्दन से। भोपाल गंज रियासत की भले ही एक-एक इंट बिक जाए। परवाह नहीं।''

"तो यहां भी कौन परवाह करता है। मैं खड़े-खड़े माधोगंज की ज़मींदारी को बेच दूंगा और वाशिंगटन से कौंसिल बुलाऊंगा।''

"देखा जाएगा, गवर्नर साहब बहादुर की दोस्ती पर न फूलिएगा। शहादतें दूंगा। पता चल जाएगा कोर्ट में।''

"देख लूंगा, किसके धड़ पर दो सिर हैं ! कौन शहादत देने आता है।''

"तो तुम पर तीन हरफ हैं, जो करनी में कसर रक्खो।''

"राजा साहब, लोथें बिछ जाएंगी, लोथें।''

"खून की नहरें बहा दूंगा, नहरें; समझ क्या रखा है आपने ?''

दोनों पुराने रईस अपने-अपने दिल के फफोले फोड़ रहे थे। और हम लोग सिर नीचा किए खानदानी रईसों की खानदानी लड़ाई देख रहे थे। जी हां, रईसों की बात ही निराली है। इसी समय कुंवर साहब लपकते हुए चले आए।

हल्के नीले रंग का बुश कोट, आंखों पर गहरा काला चश्मा, हाथ में टेनिस का रैकट, गोरा रंग, घूंघर वाले बाल, होंठों पर मुस्कान, इसी साल एम० ए० फाइनल किया था। कुंवर साहब ने राजा माधोगंज को देखा तो उन्होंने हंसकर उन्हें प्रणाम किया, और कहा—कमाल किया आपने चाचाजी, धूप में तकलीफ की, चलिए मैं 'जिम' को आपके यहां पहुंचाए आता हूं।

राजा साहब ने एकदम गुस्सा करके कहा—अयं, यह कैसी हिमाकत ? अपने खानदान को नहीं देखते, कुत्ता उनके घर पहुंचाने जाओगे ?

माधोगंज के राजा साहब ने जाते-जाते कहा—

"हौसला हो तो आ जाना अदालत में।''

"लन्दन से बैरिस्टर बुलाऊंगा—आपने समझ क्या रखा है ?"

"तो मुकाबले के लिए वाशिंगटन के वकील तैयार रहेंगे।"

इसी समय एक खिदमतगार रोता-हांपता सिर के बाल नोचता आ खड़ा हुआ। उसने कहा—गज़ब हो गया सरकार, ज़ुबेदा, उस जंगली जिम के साथ भाग गई।

"अयं, भाग गई ?"

राजा साहब बौखलाकर अपनी तोंद पीटने और हाय-हाय करने लगे। लम्बी-लम्बी सांसें खींचते हुए उन्होंने कहा—

"मेरी खानदानी इज़्ज़त लुट गई। कम्बख्त ज़ुबेदा की बच्ची ने न अपने खानदान का ख्याल किया न मेरे आली खानदान का। दोनों की लुटिया डुबोई।"

बहुत देर तक राजा साहब कलपते रहे। इसके बाद मेरी ओर देखकर कहा—

"निकल जाओ ! अभी चले जाओ—नामाकूल, मर्दूद !"

और इस तरह खट से मेरा पतंग कट गया। इज़्ज़त और आराम की नौकरी छूट गई। अब सिर्फ याद रह गए वे सात महीने और सत्ताईस दिन।

अब कहां रहे वे खानदानी रईस। अंग्रेज़ बहादुर हिन्दुस्तान से क्या गए, शौकीन राजाओं और शानदार रईसों की नस्ल ही खत्म कर गए। भारत के भाग्य तो ज़रूर जागे—पर विलायती कुत्तों की और हम जैसे विलायती पढ़े-पिट्ठुओं की तकदीर तो फूटी और फिर फूटी !

नहीं

इधर आचार्य ने कुछ नई पद्धति पर कहानी लिखना आरम्भ किया है, जो सम्भवतः हिन्दी में सर्वथा नया प्रयोग है। इसमें न कथानक है, चरित्र-चित्रण, न घटनाएं; केवल भाव हैं। भावों का आवेश नहीं है, विचारों के आधार पर स्थापना की गई है। 'नहीं' ऐसी ही कहानी है। यह कहानी 'शरत्' के एक-दो वाक्यों पर आधारित है।

•

परन्तु, दक्षिणा ने कहा—नहीं !

"नहीं क्यों ? यह भी कोई बात है भला ?" भोलानाथ ने क्रोध से फूत्कार करके नथुने फुलाकर कहा।

"नहीं, ऐसा हो नहीं सकता," दक्षिणा ने सहज, शान्त और स्थिर स्वर में कहा और फिर वह उठकर धीरे से चल दी। उसकी 'नहीं' में न तो विद्वेष की जलन थी और न क्षमा का दम्भ था। उसके नीचे झुके हुए पलकों के भीतर एक नीरव संयम झांक रहा था। आप ही कहिए भला, एक दिन जिसे उसने अपना अमल, धवल, कोमल, नवीन केले के पत्ते के समान शोभायुक्त अछूता कौमार्य पूर्ण समर्पित किया था, अपने प्राणों के उल्लास को लेकर जिसे पागल की तरह प्यार किया था, जिसकी आंखों में आंखें डालकर जीवन की सार्थकता को समझा था, अब उसीके प्रति निर्मम कल्पना कैसे कर सकती थी ? उसने तो उसी दिन, उसी क्षण सबकी निगाह से ओझल उसके सब दोष चुपके से धो-पोंछ करके साफ कर दिए थे। ऐसा क्रुद्ध शोकाकुल हाहाकार का भाव तो उसके शान्त हृदय में उठा ही नहीं।

भीतर आकर उसने देखा, वृद्ध माता चुपचाप निश्चल बैठी हैं। उसने मां के पास आ स्निग्ध, स्वर में कहा—यह क्या मां, अभी तक चूल्हा नहीं जला ! आज रसोई नहीं बनेगी क्या ? बाबूजी के दफ्तर जाने का तो समय भी हो चुका। हरिया गया कहां ?

उसने आकुल नेत्रों से इधर-उधर हरिया की खोज की। और फिर उसकी दृष्टि मां के ऊपर आ टिकी। वह उसी तरह पत्थर की मूर्ति की भांति स्थिर बैठी थीं। क्षण-भर उसने मां को देखा, फिर स्थिर गति से रसोई की ओर चल दी। परन्तु इसी समय भोला बाबू लम्बे-लम्बे डग

भरते भीतर आकर क्रोध और आवेश में कांपते हुए बोले—कहे देता हूं दाखी, सब बातों में तेरी ही नहीं चलेगी। उसे सज़ा देना मेरा काम है, मैं उसे ऐसा मज़ा चखा दूंगा कि जिसका नाम ! अरे वाह, मेरी फूल-सी बेटी के साथ यह धोखेबाज़ी ! इसीलिए मैंने उसे खर्च देकर विलायत भेजा था ? ऐसा पाजी, रास्कल ! मैं उसे जेल की हवा न खिलाऊं तो भोलानाथ नहीं। और खर्चे की डिग्री तो हुई रखी है।

भोला बाबू की गले की नसें ऊपर को उभर आईं और चेहरा विकृत हो गया। परन्तु दक्षिणा ने एक शब्द भी मुंह से नहीं कहा। पिता की बात सुनने को एक पग भी रुकी नहीं, वैसे ही शान्त भाव से रसोई में चली गई।

वृद्धा ने कहा—हुआ, अभी तुम जाकर स्नान-पूजा से निपट लो, तब तक मैं थोड़ा जलपान बनाए देती हूं। अब इस समय रसोई तो बन नहीं सकती। मैं भी देखूंगी, मेरी बेटी के भाग्य पर पत्थर मारकर कौन कैसे सुख से बैठता है।

पत्नी की बात से भोला बाबू को बहुत सहारा मिला। बेटी ने जो उनके रोष का साथ नहीं दिया, उसकी खीझ पत्नी के इस समर्थन से बुझ गई। उन्होंने थूक निगलकर कहा—देखूंगा, देखूंगा !

और वे आगे की बात कह न सके। पत्नी रसोईघर में चली गई थी ! हरिया साग-तरकारी लेकर आ गया था। भोला बाबू और कुछ न कहकर स्नानगृह में घुस गए।

उसी दिन तीसरे पहर दक्षिणा को अन्ना दीदी ने पकड़ा। 'अन्ना दीदी' दक्षिणा के मुंह से निकला अन्नपूर्णा का कोमलतम संस्करण है। अन्नपूर्णा विधवा है, दो बच्चों की मां है। उसके पति बहुत ज़मीन-जायदाद छोड़ गए हैं। वह पढ़ी-लिखी, दुनिया देखी 40 साल की आयु की महिला है। उसने पति के साथ विश्व-भ्रमण किया है, स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा सुनी और की है, वह स्त्री-स्वातन्त्र्य की बहुत बड़ी समर्थक है। स्त्रियों की सभा-सोसाइटियों में उसका आना-जाना है। दक्षिणा ने जो उसके नाम का यह कोमलतम संस्करण किया है, सो खूब प्रसिद्ध हो उठा है। अब तो सभी लोग उसे अन्ना दीदी के नाम से ही पुकारते हैं। अन्ना दीदी जैसी पठित और प्रगल्भा रमणी है, वैसी ही मिष्टभाषिणी और स्थिरमति भी है। लोग उससे विवाद-बहस का साहस ही नहीं कर सकते, उसकी बात चुपचाप मान लेते हैं। परंतु जिस अन्ना को बहुत लोग इतना मानते हैं, आदर करते हैं, वह दक्षिणा का मन से आदर करती है। स्नेह की बात जुदा है और आदर की जुदा। अन्नपूर्णा जैसी महिला कच्ची आयु की मितभाषिणी

दक्षिणा का जो इतना आदर करती है, उसका कारण है कि दक्षिणा के गौरव को उसने पहचान लिया है। वह जानती है, यह कुसुम-कोमल बालिका कैसी ज्ञानवती है, स्त्रीत्व के तेज से परिपूर्ण है। इसमें कितना गौरव है।

अन्ना दीदी को दक्षिणा की मां ने बुला भेजा था। अपने मन की व्यथा और आग दोनों ही उसने रो-रोकर अन्ना को बता दीं। उसने सुबकियां ले-लेकर कहा—अन्नपूर्णा! भला तुम्हीं कहो, मेरी बेटी के साथ यह अन्याय, क्या मैं चुपचाप सह लूं? तुम तो बहुत पढ़ती हो, सभा-सोसाइटियों में जाती हो, स्त्रियों के अधिकारों और स्वार्थों की बड़ी हिमायती हो, क्या मेरी दक्षिणा उस जानवर का ऐसा अन्याय चुपचाप सहन कर लेगी? अरे, मेरी फूल-सी बेटी पर वह सौत लाया है, सौत!

अन्नपूर्णा को वृद्धा का अभियोग समर्थन-योग्य प्रतीत हुआ। वृद्धा की मांग सर्वथा उचित थी। दक्षिणा की ओर से क्षतिपूर्ति और निर्वाह का मुकदमा अवश्य होना चाहिए। अन्नपूर्णा उससे सहमत हुई। परन्तु जब उसने दक्षिणा की 'नहीं' को 'हां' में परिणत करने का मन ही मन संकल्प कर लिया, उसने वृद्धा से एक शब्द भी नहीं कहा, चुपचाप उठकर दक्षिणा के पास गई।

दक्षिणा पिता की बैठक साफ करने में लगी थी। वह इधर-उधर बिखरी हुई पुस्तकों, कागज़ों और सामग्री को सहेजकर ठिकाने लगा रही थी। उसकी साड़ी मैली थी, बाल रूखे थे और होंठ सूख रहे थे। पिता को जलपान कराकर जब वह मां को किसी भी तरह खाने के लिए राज़ी न कर सकी तो स्वयं भी निराहार रहने का तय कर लिया।

अन्ना ने आते ही कहा—सुन दक्षिणा, यह तो मैं जानती हूं कि पुरुष के भोग की जो वस्तु हैं उनकी जाति की तुम नहीं हो···

"यही तो दीदी, इसीसे तो मैं सोचती हूं, इसमें उनका ऐसा कुछ अपराध भी तो नहीं है, पर बाबूजी यह बात समझते ही नहीं हैं!"

"फिर भी मैं तुझसे यह पूछने आई हूं कि आखिर लोगों की निन्दा-प्रशंसा की अवज्ञा करने का तेरा साहस कहां तक स्तुत्य है!"

"नहीं दीदी, साहस नहीं, तुम तो जानती ही हो कि मैं एक कमज़ोर और असहाय नारी हूं, मैंने कभी भी अपने को शक्तिमान् समझकर घमण्ड नहीं किया।"

"यही तो। पर यह तो तुम जानती ही हो कि नारी के लिए पुरुष को पाना कितना कठिन है, इसीसे तो पुरुष को पाकर स्त्रियां सौभाग्यवती कहाती हैं।"

"क्यों नहीं, मैं यह भी जानती हूं कि नारी के लिए पुरुष को पा जाना जितना कठिन है, पुरुष के लिए स्त्री को पा जाना उतना ही आसान है।"

"यहां तक तो कुछ हानि नहीं थी दाखी, पर पुरुष को पा जाना स्त्री के लिए जितना कठिन है उतना ही गंवा देना भी है।"

"है तो, और पुरुष के लिए स्त्री का पा जाना जितना आसान है, उतना ही खो देना भी है," दक्षिणा ने एक फीकी मुस्कान होंठों में भरकर कहा।

अन्नपूर्णा हंसी नहीं। उसने कुछ कठोर होकर कहा—यह तो बहुत भारी वैषम्य है। कैसे हम इसे सहन करेंगी?

"दीदी, सहन न करेंगी तो क्या लड़ेंगी? जो प्यार और आदर की वस्तु है, उससे लड़ाई कैसी?"

"प्यार और आदर अपने स्थान पर है।"

"हां, प्यार और आदर का स्थान तो उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही है, दीदी!"

"पागलपन की बातें हैं, सम्पूर्ण व्यक्तित्व नहीं, केवल कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व।"

"ओह दीदी, तुम भी सौदा करने लगीं? कहीं प्यार भी हिसाब-किताब से माप-तोलकर होता है।

"नहीं होता, पर मैं कहती हूं कि स्त्री-पुरुष के बीच में प्यार ही तो एक चीज़ नहीं है, और भी कुछ है।"

"दीदी, तुम जो कुछ कहना चाहती हो, मैं सब जानती हूं। तुम अधिकार की लड़ाई लड़ने की सलाह दे सकती हो। तुम नर-नारी के समान-अधिकार-तत्त्व की पण्डिता हो, परन्तु···"

"परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं। मैं कहती हूं, दाम्पत्य-युद्ध में स्त्री की विजय माननी होगी। पुरुष बहुत मनमानी कर चुके। मेरा यह दृढ़ मत है कि पति-पत्नी के अधिकार समान हैं। तुम स्त्री होकर स्त्रियों की तरफ से इस दावे का प्रतिकार कर रही हो।"

"मैं प्रतिकार नहीं कर रही दीदी, न मैं यह कहती हूं कि वह सत्य नहीं है। परन्तु तुम नाराज़ न होना, इस सत्य को सत्य-विलासी दल के नर-नारी के मुंह ने भांति-भांति के आन्दोलन करके ऐसा गन्दा कर दिया है कि उसे छूने में भी घिन होती है।"

"घिन कैसे होती है, तनिक सुनूं तो?"

"तुम्हारा तो सब देखा-सुना है दीदी, सुनोगी क्या! विलायत के ही लोगों को देखो, वे कैसी आज़ादी से प्रेमाभिनय करके कितने उल्लास से

विवाह करते हैं ! उनके बीच तो माता-पिताओं के माध्यम की परम्परा नहीं है। स्वेच्छा है, प्रेम है, ठोक-बजाकर किया हुआ सौदा है, फिर क्या कारण है कि तनिक-तनिक-सी बातों पर, छोटे-छोटे कारणों को लेकर वहां विवाह-विच्छेद हो जाते हैं। वहां की अदालतों के लिए, समाज के लिए, स्त्री के लिए, पुरुष के लिए, वह एक मामूली बात हो गई है। कहो तुम दीदी, क्या उन्हें ऐसा करने में तनिक भी चोट नहीं लगती ? कहीं इतना-सा भी दर्द नहीं होता ? मैं कहती हूं, यही यदि उनका सत्य-प्रेम है, यदि यही पति-पत्नी के समान अधिकार का सच्चा रूप है, तो यह छूने क्या, आंखें उठाकर देखने के भी योग्य नहीं। मुझे तो यही आश्चर्य है कि वे लोग अपनी सभ्यता का गर्व किस बूते पर किया करते हैं।"

अन्ना दीदी की आंखों में आंसू भर गए। यह उसकी हार के आंसू थे। उसे जवाब नहीं सूझ रहा था। दक्षिणा सूखे मुंह और सूखे होंठों से अन्ना दीदी की ओर देखती रही, उस दृष्टि को सहन न कर उसने दक्षिणा को खींचकर अपनी छाती से लगा लिया। वह बहुत देर तक उसके सिर पर हाथ फेरती रही। बड़ी देर बाद उसने कहा—कैसे सहेगी दीदी, मेरे पास शब्द नहीं, कैसे तुम्हें सान्त्वना दूं।

दक्षिणा बहुत देर चुपचाप अन्नपूर्णा की गोद में लेटी रही, फिर उसने सिर उठाकर कहा —दीदी, जल्दी-जल्दी आया करो। दो मिनट ठहरो, मैं चाय बनाती हूं। मां को कुछ खिला-पिला दो, कल से उन्होंने एक बूंद पानी तक नहीं पिया है।

"अरे, इसीसे तेरा मुंह··ठहर मैं रसोई में जाकर चाय और जलपान बना लाती हूं।"

"तुम यहां ठहरो दीदी, मैं जाती हूं।"

परन्तु दोनों साथ ही साथ रसोई में जाकर चाय का सरंजाम जुटाने में व्यस्त हो गईं।

पन्द्रह बरस बाद। पुरानी सारी दुनिया बदल चुकी थी। जीवन-उषा की रक्ताभ पीत प्रभा ढलती दुपहरी में बदल चुकी थी। पुरुष की लोलुप दृष्टि जिस लिए नारी को परेशान करती है, लज्जा को पीड़ित करती है, आज उससे तो दक्षिणा को मुक्ति मिल चुकी थी। इतने दिन बाद एकाएक पति ले जाने के लिए आए थे। उन्होंने एक अनुतापपूर्ण पत्र लिखकर दक्षिणा को अपने असहाय जीवन से सूचित किया था और यह भी लिखा था कि उनके जीवन में अब केवल दक्षिणा की दक्षिणा शेष है।

दक्षिणा के हृदय में एकान्त-मिलन की ज़रा भी व्यग्रता न थी। फिर

भी ढलते हुए यौवन और तब से लेकर अब तक के दैहिक-क्रम-विकास पर आज अपरिचित रूप ही से उसका ध्यान आकर्षित हो रहा था। उन दिनों की वह चाह अब न थी। आंखें चार होते ही आंखों के कोनों से निकलती आग की चिंगारियां बुझ-बुझाकर राख हो गई थीं, वह राख भी आंसुओं से धुलकर कहां की कहां पहुंची थी। 15 वर्ष की मूक वेदना, आत्म-संयम और चिरदमन की जो रेखाएं उसके मुख पर अंकित हो गई थीं, वे तो दूर से पढ़ी जा सकती थीं। सो अब अन्ना दीदी ने लपकते हुए आकर उससे कहा—यह क्या? सन्ध्या होने को आई, तूने न कपड़े बदले, न बाल बनाए। उठ मैं चोटी गूंथ दूं। अम्मा होती तो क्या इसी भांति···

अन्ना दीदी की आंखें भर आईं। परन्तु दक्षिणा ने सूखी आंखों से उसकी ओर देखकर कहा—नित्य ही तो ऐसी ही रहती हूं दीदी, इस बेला मुझे बाल संवारने की आदत नहीं।

"न सही, पर आज तो!"

"आज क्यों?"

"तू ऐसी बच्ची है, फिज़ूल बक-बक न कर! उठ, चोटी गूंथ दूं।"

"चोटी गूंथना है तो गूंथ दो दीदी, परन्तु इससे लाभ?"

"लाभ? इतने दिन बाद वे आए हैं, सो ऐसे वेश में मिलेगी तू!"

"पर मुंह तो बदल नहीं सकूंगी।"

"न सही, पर कपड़ा-लत्ता···"

"व्यर्थ है दीदी, जिस रूप का प्रयोजन और आकर्षण दोनों ही खतम हो चुके, अब उसे कृत्रिम रूप से सजाकर उन्हें यदि धोखा दूं तो क्या यह अच्छी बात होगी?"

"धोखा क्या?"

"कि नहीं, अभी खतम नहीं हुआ, यही दिखाकर।"

"ओह, किन्तु···"

"किन्तु क्या दीदी, कहो तो—स्त्री की देह ऐसी तुच्छ चीज़ है कि उसके रूप-सौष्ठव को छोड़कर उसका और कोई उपयोग ही नहीं?"

"अन्ना दीदी रो दी। अन्ना नहीं, उसका चिरवैधव्य रो उठा। उन्होंने कहा—दाखी, इन भाग्यहीन पुरुषों की अभिलाषाओं की बात न पूछ। तुझे दुनिया की तरफ नहीं देखना हो तो मत देख; परन्तु आदमी की ओर तो देख, उसके दुर्भाग्यपूर्ण, अपूर्ण और असंयत व्यक्तित्व को तो देख।

"सो तो मैंने जीवन में देखा ही है, दीदी!"

"तो देख, भाग्य-दोष से हो या स्त्री-जाति में जन्म लेने के कारण, हमें अपना जीवन उत्सर्ग के मार्ग पर तो ले जाना ही है। यह शृंगार जो हमें

करना पड़ता है सो क्या अपने लिए ? इसे क्या हम अपनी आंखों देखती हैं ?"

"नहीं, तुम्हारी बात मानती हूं, हम अपने इस शृंगार को अपनी आंखों से नहीं देखतीं, पुरुष की आंखों से देखती हैं; परन्तु दीदी, तुम्हारा जो यह उत्सर्ग है सो सत्य नहीं। मैंने इसे कभी नहीं माना है, अब भी नहीं मानूंगी।"

"क्यों भला ? क्या तू समझती है, हम लोगों में उत्सर्ग होने का बल है ही नहीं ?"

"क्यों नहीं, बहुत है।"

"तो फिर !"

"फिर ? उत्सर्ग का बल होने ही से क्या होता है दीदी, प्रवृत्ति होनी चाहिए, अन्तःप्रेरणा होनी चाहिए। निराशा और आंसुओं से भीगकर भी कहीं उत्सर्ग होता है।"

"तू समझती है कि स्त्रियों में उत्सर्ग की प्रवृत्ति ही नहीं है ?"

"प्रवृत्ति है, पर यह प्रवृत्ति उनके भीतर जो नारी की जागरित सत्ता है न, उसकी पूर्णता से नहीं, शून्यता से उत्पन्न होती है। उससे न तो नारी-जाति का कभी भला हुआ, न वे पुरुष का भी कुछ भला कर सकीं !"

"दाखी, मैं तो समझती रही हूं कि त्याग, उत्सर्ग और प्यार सब एक ही वस्तु है और उत्सर्ग स्त्री का स्वभाव है।"

"नहीं दीदी स्वभाव नहीं, अभाव है। भाग्य ने तुम्हें चिरवैधव्य दिया दीदी, तुम्हें त्याग और विसर्जन का जीवन अपनाना ही पड़ा। अब तुम्हीं कहो, इसमें तुम्हें कितना तप करना पड़ा ? कितनी निष्ठा खर्च करनी पड़ी ? अब तुम मुझसे क्या यह कहना चाहोगी कि जीवन का श्रेय वैधव्य है, जहां तप है, त्याग है, उत्सर्ग है।"

"ओह ! नहीं, नहीं, मैं यह कभी न कहूंगी। मैं तो कहूंगी, वैधव्य की अपेक्षा तो स्त्री के लिए एक हिंस्र पशु की पत्नी बनने में कहीं नारीत्व की सार्थकता है।"

"तो दीदी तुम्हारी यह बात जितनी ही सत्य है, उतनी ही भयानक भी है। यह तुम्हारे उस समान अधिकारों की परम्परा से बिलकुल ही पृथक् सत्य है। और मैं उसे ठीक सत्य स्वीकार करती हूं।"

अन्ना दीदी ने बहुत आंसू बहाए। स्नेह से दक्षिणा को अंक में भर लिया। कहा—दाखी, तेरा सत्य मैंने इतने निकट रहकर भी कभी नहीं समझा। पर आज समझा। तेरे पति ने जो तेरा तिरस्कार किया, तुझे धोखा दिया उसकी जो तूने कभी किसीसे शिकायत नहीं की और संसार

भर के युग के मानव-स्वीकृत इस सम्बन्ध के प्रति जो तूने इतनी जबर्दस्त अवज्ञा की उसका भेद भी जाना, परन्तु दाखी, अविचार से केवल एक ही पक्ष क्षतिग्रस्त नहीं होता, दोनों ही पक्षों को आघात लगता है। उस दिन जब तुझे दुलहिन के रूप में तेरे पति ने पाया था, तब उसने अपने सौभाग्य की ओर देखा ही नहीं था। आज उसे यह सूझ आई है, सो तू शृंगार करके, जो खत्म हो चुका, 'अभी है, वह अभी है' यह प्रमाणित करके उसे धोखा देना नहीं चाहती; सत्य रूप में जो है, उसके सामने जाना चाहती है, सो ठीक है।

"यही बात है, दीदी। जो क्षणभंगुर है, उसकी ओर पुरुषों को देखने का चस्का लग गया है। वह इस सिल की अपेक्षा उस फूल को ज्यादा पसन्द करते हैं। सत्य क्या है, इसकी जांच का मापदण्ड तो उनके पास है ही नहीं। परन्तु हम स्त्रियां तो जानती हैं कि जीवन चाहे जितना भी क्षणभंगुर हो उसका सब कारबार स्थायित्व को लिए हुए है। और इसीसे हमारे लिए उस फूल की अपेक्षा यह सिल-लोढ़ा ही अधिक सत्य है। इसके जल्दी सूखकर झड़ जाने का भय नहीं है।"

"सो आज उस सिल-लोढ़ा ही की पूजा का पवित्र दिन है।"

"कौन जाने, तुम तो जानती ही हो दीदी, पुरुषों को इसकी आदत नहीं।"

"तेरी जैसी स्त्रियां पुरुषों को ऐसी आदत डाल देती हैं जो युग-युग तक उनका भला करती हैं। तूने पति को अब तक दिया ही है, उससे कभी कुछ लिया नहीं। पिता के इतना कहने पर भी डिग्री के रुपये नहीं लिए।"

"तुमसे तो कुछ छिपा रहा नहीं, दीदी। मां और बाबूजी के न रहने पर तुम्हीं एक रहीं जिसका मुझे सहारा रहा।"

"पर मुझसे भी तो तूने कभी एक धेला नहीं लिया। तूने कुली-मजदूरों के कपड़े सी-सीकर गुज़र की, पर जिस पुरुष ने पति होकर त्याग दिया, उसका अन्न मुंह में देकर, उसी के दिए वस्त्र पहनकर आबरू बचाना स्वीकार नहीं किया।"

दक्षिणा इस बार रो दी। उसने कहा—दीदी, इतनी ओछी बनने से पहले तो मैं कुएं में कूदकर मर जाना अच्छा समझती।

युगलांगुलीय

रवीन्द्र ठाकुर की एक-दो पंक्तियों पर यह कहानी लिखी गई है, जिसमें दो आधुनिकतम उच्चशिक्षिता भारतीय नारियों के विभिन्न दृष्टिकोणों की रेखाएं हैं।

•

बहुत दिन बाद दोनों सखियां मिली थीं; कोई पांच साल बाद। श्रद्धा और रेखा। दोनों बचपन में साथ खेली थीं, साथ ही पढ़ी थीं। साथ ही दोनों ने प्रथम श्रेणी में एम० ए० परीक्षा पास की थी। श्रद्धा ने दर्शन और मनोविज्ञान में, और रेखा ने राजनीति में। दोनों में प्रगाढ़ प्रेम था। एक जान दो कालिब थीं दोनों। दोनों साथ खाती थीं, एक दिन भी मिलन न होता तो बेचैन हो जाती थीं। लोग देखते थे और हंसते थे। घर के लोग हंसी में उन्हें जुड़वां बहनें कहते थे, और कालेज में उनकी संगिनियों ने उनका नाम रखा था युगलांगुलीय। श्रद्धा का विवाह हो गया, परन्तु रेखा ने विवाह नहीं कराया। वह भारत सरकार से वज़ीफा पाकर उच्चशिक्षा प्राप्त करने यूरोप चली गई। यूरोप और अमेरिका के विश्वविद्यालयों में राजनीति और अर्थशास्त्र का अध्ययन करके उसने प्रतिष्ठा के साथ डाक्टरेट प्राप्त किया था। उसके थीसिस की परीक्षकों ने बड़ी प्रशंसा की थी। इसके बाद उसने सारे यूरोप और बाद में सोवियत रूस में भ्रमण किया और वहां की राजनीति और अर्थशास्त्र का मनन-अध्ययन किया था। अब वह सब भांति कृतकृत्य हो, अपने विषय की प्रकाण्ड पण्डिता हो, सारे विश्व की आधुनिकतम सभ्यता, समाचार, राजनीति और अर्थशास्त्र का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर भारत लौटी थी, जहां भारत सरकार ने उसकी योग्यता का आदर कर उसे तत्काल ही केन्द्र में एक उच्च पद प्रदान किया था। और अब वह अपनी दृष्टि से अपने ध्येय में कृतकृत्य हो छह मास की छुट्टी ले सीधी अपनी सखी से मिलने उसके घर आई थी। माता-पिता से मिलना उसने पीछे के लिए छोड़ दिया।

श्रद्धा का विवाह विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त होते ही हो गया था। उसके पति विश्वविद्यालय में जीव-विज्ञान के प्राध्यापक थे। वे भी अपने विषय के पारंगत पण्डित थे। उनके नवीन अन्वेषणों की उन दिनों देश भर में चर्चा थी। वे मृदुलस्वभाव, मितभाषी, गम्भीर प्रकृति, धर्मभीरु

और एक अंश तक लजीले तरुण थे। सब मिलाकर उन्हें मिलनसार नहीं कहा जा सकता था। अवश्य ही वे बहुत कम लोगों से मिलते-जुलते थे। आठों पहर अध्ययन में लगे रहते थे। पास-पड़ोस के सब लोग उन्हें मज़ाक से 'मौनी बाबा' कहा करते थे। क्योंकि वे किसी से बातचीत तक नहीं करते थे। परन्तु पड़ोस के सभी छोटे-बड़े लोगों के सुख-दुःख में वे तुरन्त पहुंच जाते थे। वे एक आदर्श शान्त, शिष्ट पुरुष थे। एकान्तप्रिय होने पर भी वे शुष्क काष्ठ न थे। उनका मुक्त हास्य उनके हृदय की स्वच्छता और विशालता को प्रकट करता था।

इस बीच श्रद्धा को एक कन्या-रत्न की उपलब्धि हुई थी। कन्या अभी तीन वर्ष की थी। उसका नाम था रश्मि। वह हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर और लुभावनी बालिका थी। ज्योतिष्मती रविरश्मि की भांति उज्ज्वल कान्ति-युक्त उसका दन्तुल हास्य शरच्चन्द्र-कौमुदी की भांति मोहक था, और उसकी अटपटी तुतलाती वाणी वीणा की झंकार से भी अधिक मधुर और हृदयहारिणी थी। माता उसकी मनोविज्ञान की आचार्या थीं। अतः उसने उस बालिका को उसके जीवन के आरम्भिक तीन वर्षों में एक बार भी रोने, आंसू बहाने या हठ करने, मचलने का अवसर नहीं दिया था। इसी अल्प वय में वह अनुशासित, नियमित और समझदार बन गई थी। जब देखिए तभी उसका शुभ्र हास्य, घर-आंगन में बिखरा रहता, उसकी तोतली वीणाविनिन्दित बाणी और अटपटी चाल की ठुमकियों से घर अनुप्राणित रहता था।

रेखा इस बीच ज़रा भर गईथी। बचपन से ही वह हृष्ट-पुष्ट थी। रंग उसका मोती के समान उज्ज्वल था। उसपर अब चम्पे की आभा के समान पीत प्रभा छा रही थी। उसके शरीर के उभार के साथ गृहिणी का गाम्भीर्य उसके अंग में उग रहा था। अभी वह केवल अट्ठाईस ही वर्ष की थी, पर उसमें नारीत्व, पत्नीत्व, मातृत्व और गृहिणीत्व के तत्त्व मिश्रित होकर उसकी सुषमा की अपूर्व वृद्धि कर रहे थे। प्रत्येक उस व्यक्ति को जो उसके सम्पर्क में आए, छोटा या बड़ा, उसकी मन्द मुस्कान और विनयशील के आगे नतमस्तक होना ही पड़ता था।

दोनों ही ये अभिन्न सखियां अब दो विभिन्न मनोवृत्तियों और परि-स्थितियों से लदी-फदी जीवन की देहरी पर खड़ी थीं, जागरूक और ज्ञान-गरिमा से परिपूर्ण। एक अभी तक कुमारी थी—आत्मार्पण से अछूती, विश्व की नई सभ्यता, शिक्षा, आदर्श और जीवन-ध्येय का विधिवत् अध्ययन करके अपनी सम्पूर्ण चेतना, निष्ठा और विवेक की स्वतन्त्र स्वामिनी; अपने अधिकारों के ज्ञान से सम्पन्न और उसकी रक्षा में समर्थ;

आशा, आकांक्षा और साहस का पुंज आत्मा में संजोए हुए।

और दूसरी थी—पत्नीत्व, मातृत्व और गृहिणीत्व की गरिमा से सम्पन्न आत्मार्पित, कर्त्तव्यपरायणा नारी; अधिकारों का समूल विसर्जन किए हुए; त्याग, तप और प्रेम की ज्योतिर्मयी दीपशिखा। दोनों परस्पर अभिमुख थीं। रेखा ने इस थोड़े से ही समय में उसका श्रम, तत्परता, सेवा और गृहिणी-रूप देख लिया था। वह प्रभावित हुई थी। उसने यूरोप और सोवियत भूमि की जागरित नारियां देखी थीं जो केवल घरों में ही नहीं, जीवन के प्रत्येक पहलू में पुरुषों से कन्धा मिलाकर चल रही थीं। परन्तु यहां उसने जो कुछ देखा वह तो सर्वथा नवीन था। उसने देखा था —नारी का एक अपना क्षेत्र, जहां पुरुष का कोई प्रवेश ही नहीं है। किन्तु पुरुष के जीवन की सफलता केवल उसपर निर्भर है। वहां अकेली ही श्रद्धा उसकी सखी निर्द्वन्द्व चली जा रही है, बाधा और शंकाओं रहित; घर के पशु और नौकरों से लेकर छोटी से छोटी चीज़ पर भी ममत्व बिखेरती हुई।

सब कामों और भोजन से निवृत होकर दोनों सखियां बैठीं। बातें प्रारम्भ हुईं।

श्रद्धा ने पूछा—सखी ! तूने सारी दुनिया की खाक छान डाली। सारी दुनिया तूने देखी और समझी। यह बता मुझे, कहीं सौन्दर्य के भी दर्शन हुए ?

"हुए, दक्षिणी अफ्रीका के एक निर्जन मैदान में, जब मैं वहां का प्रसिद्ध जल-प्रपात देखकर लौट रही थी।"

श्रद्धा हंस पड़ी। बड़ी स्वस्थ थी वह हंसी। उसने कहा—खाक पत्थर। सौन्दर्य के तुझे दर्शन हुए भी तो अफ्रीका में। भला काला था या गोरा वह सौन्दर्य। होंठ उसके कितने मोटे थे ?

"काले-गोरे का तो मैंने ख्याल नहीं किया श्रद्धा। बस मैं ठगी-सी खड़ी देखती रह गई ! उस समय मेरा मस्तिष्क विचारों से भर गया !"

"सच ! कौन थी वह ?"

"एक क्षीणकलेवरा नदी की स्वर्णधारा; पर्वतों से उतरकर मदान में आई थी। बरसात में उसका बड़ा विस्तार रहता होगा। फैलाव उसका बहुत था, पर जलधारा तो पतली स्वर्णरेखा ही-सी थी। उसके चारों तरफ सूखे रेत के टीले, खड्ड और मिट्टी के ढूह और उनके बीच वह बहती हुई स्वर्णप्रभा क्षीण-कलेवरा सलिलधारा ! जानती हो उस समय मेरे मन में क्या विचार उदय हुए ?"

"तुम्हीं कहो सखी !"

"कि यह है नारी। और ये सूखे रेत के टीले, मिट्टी के ढूह और खड्ड

सब पुरुष हैं, जो रूखे-सूखे अपनी विशालता के घमण्ड में जहां के तहां खड़े हैं और उनके बीच यह स्रोतस्विनी नारी दोनों कूलों को स्तन्य पान कराती कलकल नाद करती अपनी सरल-तरल गति से बही चली जा रही है।"

"क्षीणकलेवरा उस तरला प्रवाहित पयस्विनी को तुमने नारी का विकल्प ठीक ही दिया रेखा, परन्तु उन बालू के ढूहों को और मिट्टी के सूखे टीलों को तुम पुरुष कैसे कल्पित कर सकती हो?"

"क्यों न करूं भला! क्या पुरुष समाज उस निश्चल शुष्क बालू के ढूहों की भांति निष्फल और अकर्मण्य नहीं है? क्या उन्हें दीखता नहीं है कि उनके वामांचल में नारी विनम्र सेविका की भांति अपने ही में संकोच-लाज से सिमटी स्वच्छ सुधा-स्रोत में बही जा रही है, एक क्षण विश्राम की बात तो दूर, मुड़कर पीछे देखने का भी उसे अवकाश नहीं है। उसका समूचा जीवन ही एक ध्रुव लक्ष्य की ओर अनवरत रूप में अग्रसर हो रहा है, और इन अकर्मण्य बालू के ढूहों और मिट्टी के सूखे लोंदों को पैरों से कुचलते हुए, जिधर जल-स्रोत है, उधर ही लोग जाकर देखते हैं कि वहां सुषमा, छाया और हरियाली का प्रसाद फैला हुआ है।"

श्रद्धा ने हंसकर कहा—तूने ब्याह नहीं किया, इसीसे मैंने समझा था कि तू जड़ है, पर तूने सौन्दर्य ही नहीं, सत्य को भी परख लिया।

"ब्याह न करने से ही मैं जड़ हो जाऊंगी? कहीं नारी जड़ होती है? ब्याह नहीं किया, पर नारी तो हूं।"

"तूने क्या हमारी पुष्करिणी देखी।"

"चाय पीकर उधर ही चली गई थी। सच मान श्रद्धा, देखकर ठगी-सी रह गई। यूरोप में भला यह सुषमा कहां!"

"मेरे नील कमल देखे तूने; कैसे लगे?"

"तू बुरा मान चाहे भला मान, एक चुपके से चुरा लाई हूं। यह मेरे जूड़े में लगा है। ऐसे बड़े-बड़े सुन्दर नील कमल मैंने कभी देखे न थे। पारिजात भी ऐसा ही फूल होता होगा, जिसके लिए रुक्मिणी ने कृष्ण को इन्द्र से विग्रह करके नन्दन वन से ले आने का आग्रह किया था।"

"ऐसे फूल और ऐसी सुषमा क्या तूने उस क्षीणकलेवरा स्रोतस्विनी में भी नहीं देखी? क्या उस नदी में ऐसे फूल नहीं पैदा होते?"

"बहते पानी में भला फूल हो सकते हैं? फूल तो बन्द पानी में ही होते हैं। तो बहिन, मेरे सौन्दर्य का दृष्टिकोण भी देख, तू उस प्रवाहिणी नदी को नारी की उपमा देती है, तो मैं अपनी इस पुष्पिता पुष्पकरिणी को नारी की उपमा से सुव्याख्यात करती हूं। परन्तु मेरी इस नारी में और तेरी उस नारी में अन्तर तो है। तेरी वह नारी पाश्चात्त्य नारी है—निरन्तर प्रवा-

हित अनवरत अग्रसर होती हुई। परन्तु यह नारी भारतीय है। अपने घर के आंगन में बद्ध और पुष्पिता। कह, दोनों में अधिक सुन्दर कौन है ?"

"सुन्दरता की बात छोड़। तू क्या यह कहना चाहती है कि भारतीय नारी को जो हमने घर के आंगन में बांध रखा है, वही उसके सौन्दर्य की पराकाष्ठा है।"

"हां, यही मैं कहती हूं। परन्तु भारतीय नारी को किसीने बांधकर नहीं रखा है, वह तो स्वयं ही स्वेच्छा से कर्म-बन्धन में बंध गई है। परन्तु उसका यह बन्धन साधारण नहीं है। उसने संसार की प्रलयकारिणी शक्ति को अपने साथ बांधकर रखा है। दूसरे शब्दों में, नारी शयनगृह का दीप है जो स्वयं जलकर स्निग्ध प्रकाश प्रदान करती है।"

"तुम्हारा यह अभिप्राय तो नहीं है कि नारी के कार्य का प्रसार संकीर्ण है, विशाल संसार-क्षेत्र में उसके लिए स्थान ही नहीं है। मात्र पति, पुत्र, परिजनों को संतुष्ट करने ही में उसके कर्त्तव्य की पूर्ति हो जाती है ?"

"मेरा अभिप्राय यह है कि नारी का जीवन से नकद का लेन-देन है। अपने सभी कार्यों के फलों की उपलब्धि वह हाथों-हाथ चाहती है।"

"और पुरुष।"

"पुरुषों की बात जुदा है। उनका कार्यक्षेत्र दूर देश और भूत-भविष्य में फैला हुआ है। उनपर आसपास की निन्दा-स्तुति का प्रभाव ही नहीं पड़ता। आशा और कल्पना के आसरे वह अविचलित रहता है।"

"आशा और कल्पना का आसरा तो स्त्रियों को भी तकना पड़ता है।"

"बहुत कम। उनका प्रधान काम है आनन्द-दान करना। यदि नारी संगीत और कविता की भांति अपना अस्तित्व सम्पूर्ण सौन्दर्यमय बना डाले तो उसके जीवन का उद्देश्य पूरा हो गया। बस, अब काहे को आशा और कल्पना के चक्कर में फंसे ? वह तो हाथों-हाथ लाभ में ही खुश है।"

"इसमें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की लघुता का आभास तुझे नहीं मिलता, श्रद्धा, तनिक भी नहीं। हमारी सीमा वृहत्त्व में नहीं है, महत्त्व में है।"

"बृहत्त्व में क्यों नहीं, और महत्त्व में कैसे ?"

"देखती तो है तू यह सारा लम्बा-चौड़ा स्थूल शरीर। इसकी सीमा बृहत्त्व में है। पर शरीर के भीतर जो मर्मस्थल हैं, वे छोटे भी हैं और गुप्त भी। पर शरीर के बृहत्त्व से उन मर्मों के महत्त्व का मूल्य अधिक है। हम सब नारी मानव-समाज की मर्मस्थली हैं। तू इतनी मोटी बात भी नहीं समझती है ?"

रेखा हंस पड़ी। उसने कहा—तेरे मर्म की बात सचमुच बहुत मोटी है, पर इसमें क्या तू नारी को घर में बांधकर भी मनुष्य-समाज के सिर पर बैठाना चाहती है?

"नारी को मनुष्य-समाज के सिर पर या पैरों पर बैठाने से मेरा क्या प्रयोजन है। मैं तो यह कहती हूं कि मनुष्य प्रतिदिन कर्म-चक्र से कितनी धूल-गर्द उड़ाते हैं, कितनी मलिनता बखेरते हैं, उसे तो कार्यकुशल हाथों से नारी ही प्रतिक्षण साफ करती है। फिर उसके कार्यक्षेत्र को तू संकीर्ण क्यों कहती है? मानस संसार की सारी ही व्याधियां भूख-प्यास, शान्ति और रोग-शोक ये सभी तो उसी के कार्यक्षेत्र के भीतर उत्पात मचाते हैं, जिनका शमन धैर्यमयी लोकवत्सला नारी ही तो प्रतिदिन करती है।"

"इसका अभिप्राय तो यही है कि भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान पुरुष से ऊंचा है?"

"यह तो है ही।"

"इसीसे तो वह पति को देवता कहती है, पतिपद पूजती है और अपने को चरणदासी कहती है।"

श्रद्धा हंस दी। उसने कहा—रेखा, तू तो व्यंग्य-बाण बरसाने लगी। बचपन में हम लोग गुड्डे-गुड़ियों से कैसा खेलती हैं, जैसे वे जीवित पुतले हैं। बड़ी होने पर इस पुरुष पुतले से वैसे ही खेलती हैं। फिर हम हिन्दू लोग तो ईंट-पत्थर, वृक्ष, नदी सभी को देवता मानते हैं। फिर पुरुषों ही को देवता मानने से क्या नई बात हुई! इसके अतिरिक्त भारतीय पुरुषों को सारी पृथ्वी पर केवल उनके अन्तःपुर से ही सम्मान मिलता है। इसीसे हम उन्हें केवल मालिक ही नहीं, देवता मान लेती हैं। पर यह क्या हम नहीं जानतीं कि वे तृण और मिट्टी के पुतले मात्र हैं। हकीकत में जहां गौरवपूर्ण मनुष्यत्व है, वहां छद्मवेश की आवश्यकता ही नहीं है। जहां मनुष्यत्व की कमी है, वहां देवता का ढोंग रचना पड़ता है।

"परन्तु जो यथार्थ मनुष्य है, उसे देवता का अर्घ्य लेते लज्जा आनी चाहिए। इसके अतिरिक्त जो पूजा ग्रहण करता है, उसे पूजा के योग्य अपने को बनाना चाहिए। परन्तु भारत में तो मैं ऐसा देखती हूं कि पुरुष-सम्प्रदाय अपने इस मिथ्या देवत्व पर ही गर्व करता है। उसकी योग्यता जितनी ही कम है, उतना ही उसका आडम्बर अधिक है। इसीसे वह स्त्रियों के पतिव्रतधर्म और पतिव्रता के माहात्म्य पर जी-जान से उपदेश दे रहा है। चाहिए तो यह कि पत्नियों को पतिपद-पूजा करना सिखाने की अपेक्षा पतियों को देवता होने की वास्तविक शिक्षा दी जाए।"

श्रद्धा हंस पड़ी। उसने कहा—देवता होने की भी कहीं शिक्षा दी जा

सकती है? वह तो असल में हमारी मनोकल्पना ही है। फिर पुरुष यदि देवता है तो हम स्त्रियां भी देवी हैं। चलो छुट्टी हुई।

"देवीजी! तुम तो केवल कविता की देवी हो। घर के देवता तो पुरुष ही हैं। देवता का सारा भोग तो वही पाते हैं। कहने को तुम सुख-सम्पत्ति की देवी हो, पर सच पूछो तो सारी पृथ्वी पुरुषों की सम्पत्ति है। इसके अतिरिक्त यदि कुछ हो तो वह तुम्हारा हो सकता है। छप्पन भोग उनके लिए हैं और जूठन तुम्हारे लिए। प्रकृति का मुक्ताकाश-विहार उनके लिए है और घर की एक खिड़की का सहारा तुम्हारे लिए। वे पैर पुजवाते हैं, तुम उनकी लात खाती हो। बस यही तो देवी-देवताओं की बातें हैं या और कुछ?"

"और कुछ क्या, बहुत कुछ। ये सब तो केवल भाव-भावनाओं की ही बातें हैं। वास्तविक जीवन की ओर देखो। हमारे देश में गार्हस्थ्य का भार कितना गुरुत्तर है, उसे तो स्त्रियां ही सदा से ढोती आई हैं। आचार, व्यवहार और भारतीय स्वजनों से भरे परिवार के बोझ को खींच ले जाना क्या ऐसा आसान है! दूसरे देशों में पुरुष अर्थ और राजनीति के बड़े-बड़े चक्र चलाते हैं। इससे उनके जीवन-क्रम नारी के जीवन-क्रम से बहुत भिन्न हो गए हैं। पर भारतीय पुरुष तो एकदम घरघुस्सू हैं, पत्नीचालित। किसी बड़े क्षेत्र में कब से उनके जीवन का विकास रुक गया है, यह बात अब बिना अतीत का इतिहास पढ़े याद ही नहीं आती। व्यवहार में तो उन्हें आज किसी पुरुषोचित कर्त्तव्य का पालन करना पड़ता नहीं।"

"बस, देवता बनकर स्त्रियों की पदपूजा ग्रहण करना और वे पतिव्रत-धर्म को न भूल जाएं, इसकी याद दिलाते रहना – यही इनका मुख्य कार्य रह गया है। क्यों यही न? नहीं, बहिन नहीं। हम भारतीय स्त्रियों का यह सौभाग्य ही है कि हमें अपना कर्त्तव्य खोजने कहीं भटकना नहीं पड़ता। वह हमें हमारे घर के भीतर आप ही आप हमारे हाथों आ जाता है। हम अपने प्यार के दान से अपना कर्त्तव्य-पालन आरम्भ करती हैं। इसीपर से हमारी सम्पूर्ण चेतना-वृत्ति जाग उठती है। बाहर की कोई बाधा हमें रोक नहीं सकती। हम अधीनता के भीतर अपना तेज सुरक्षित रखती हैं। पुरुषों की बाह्य प्रधानता इसीसे हमें खलती नहीं। वे बाह्य जगत् में तीसमारखां हों, पर हमारे वे आज्ञाकारी और पालतू अनुगत पति ही हैं।"

"अनुगत क्यों?"

"देखो रेखा, तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा कि बुद्धि में भारतीय स्त्रियां पुरुषों से श्रेष्ठ हैं। इस अनुपात से शिक्षिता स्त्रियां पुरुषों से ऊपर हैं।"

"यह कैसे?"

"ऐसे कि हमारे देश के शिक्षित पुरुष मूढ़ अहंकार में अभिभूत हैं और उन्होंने शिक्षा और संस्कृति में अपनी वास्तविकता नष्ट कर दी है। इसीसे उनके मनोभाव विकृत हो गए हैं। शिक्षा पाकर वे धरती पर पैर ही नहीं रखते। अहंकार उनकी बुद्धि को कुण्ठित कर देता है। पर हम स्त्रियों ने तो अपनी शिक्षा को अपना आभूषण बना लिया है। वह हमारा शृंगार है। उसमें संयम और नम्रता का समावेश करके अपने कर्त्तव्य में जोड़ देती हैं। इसीसे जहां पुरुष घमण्ड में तना हुआ सब जगह प्रभुत्व चाहता है, वहां हम प्रेम और आत्मीयता के सम्बन्ध स्थापित करती हैं।"

"नर-नारी का यह भेद क्या स्त्री-पुरुष की स्वाभाविक कोमलता के कारण है?"

"नहीं बहिन, स्त्री-चरित्र में जो एक प्राकृत सुबुद्धि और सद्विवेचना तथा चरित्र की उच्चता है, वही उसका कारण है।"

"तो तू यह कहना चाहती है कि भारतीय समाज में स्त्री ही की प्रधानता है?"

"नहीं तो क्या, अरी रेखा! यह पुरुष तो मुरचा लगा हुआ रुपया है; वह हमारी ही साख पर चलता है।

"यहां तक?" रेखा खिलखिलाकर हंस पड़ी। श्रद्धा ने और भी गम्भीर होकर कहा—हंसने की बात नहीं बहिन, सच्ची बात है। देख, हम लोग दिन-रात काम में लगी रहती हैं। इसीसे हम शिक्षा के व्यवहारदर्शन को सरलता से हृदयंगम कर लेती हैं और उसे अपने जीवन का अंग बना लेती हैं। हमारा चरित्र-बल इसमें हमारी सहायता करता है। शिक्षा से चरित्र का यह मेल सोने में सुहागा है। पुरुषों में यह है ही नहीं। इसीसे तुम देखती हो कि हमारे देश में शिक्षिता स्त्रियों के अनुरूप शिक्षित पुरुष मिलने ही दूभर हैं। यदि वे अपने बाह्य आडम्बरों को घटा दें, हमारी तरह गर्वरहित हों, विनम्र-भाव से काम में लग जाएं, चरित्र का विकास करें, विश्वास का आंचल पकड़ें तो आज जो स्त्री-पुरुष के अधिकारों का तुमुल संग्राम छिड़ा है, सहज ही बन्द हो जाए। एक-दूसरे को आत्मार्पण कर दें; दोनों पृथक् व्यक्ति न रहकर एक इकाई हो जाएं।

"तो बहिन, तू ऐसा कर कि इस पालित पशु के गले में अपने गले की चमकती सोने की जंजीर डाल और उसके लम्बे-लम्बे कान पकड़कर कह कि—बुद्धू मियां, भोजन खाने के लिए है, मुंह पर लपेटने के लिए नहीं। इसी प्रकार शिक्षा मन को उन्नत करने के लिए है, कोट-पतलून की जेबों में भरने के लिए नहीं।"

"मैं तो अपने हिस्से का काम कर चुकी रेखा, अब तेरी बारी है। जरा

अच्छे-से किसी लम्बे कान वाले को पकड़ कर···समझी कि नहीं ?"

दोनों सखियां खिलखिलाकर हंस पड़ीं। श्रद्धा ने घड़ी पर दृष्टि डाल-कर कहा—ओहो ! बातों ही बातों में कितना वक्त बीत गया, पता ही न चला ! जरा उठूं, मुन्नी अब सोकर उठने ही वाली है, उसके लिए दूध गर्म कर दूं। और उनके भी आने का समय हो रहा है, चाय का डौल करूं। अब मैं तुझे आलू के चोप खिलाऊंगी। देख कैसे लगते हैं। अच्छे लगें तो एक अच्छा-सा सर्टिफिकेट देना।

"क्या करेगी सर्टिफिकेट का ?"

"शीशे में लगाकर घर में लटकाऊंगी। लोग देखेंगे और मेरी इस विद्या की प्रामाणिकता की दाद देंगे।"

"अच्छी बात है, सर्टिफिकेट दूंगी। पर सिर्फ खाकर ही नहीं, मुझे भी चोप बनाना सिखा। पहले अंगीठी जलाने से शुरू करूं।"

"अब गिलहरी रंग लाई ! तो ऐसी जल्दी क्या है, सगाई तो पक्की कर। खाने और सराहना करने वाला आ जाए तब बनाना भी सीख लेना।"

श्रद्धा ने प्रेम भरे नेत्रों से रेखा को देखा और रेखा श्रद्धा से लिपट गई।

•••